ओ३म्

महर्षि दयानन्द

और उनके अनुयायी

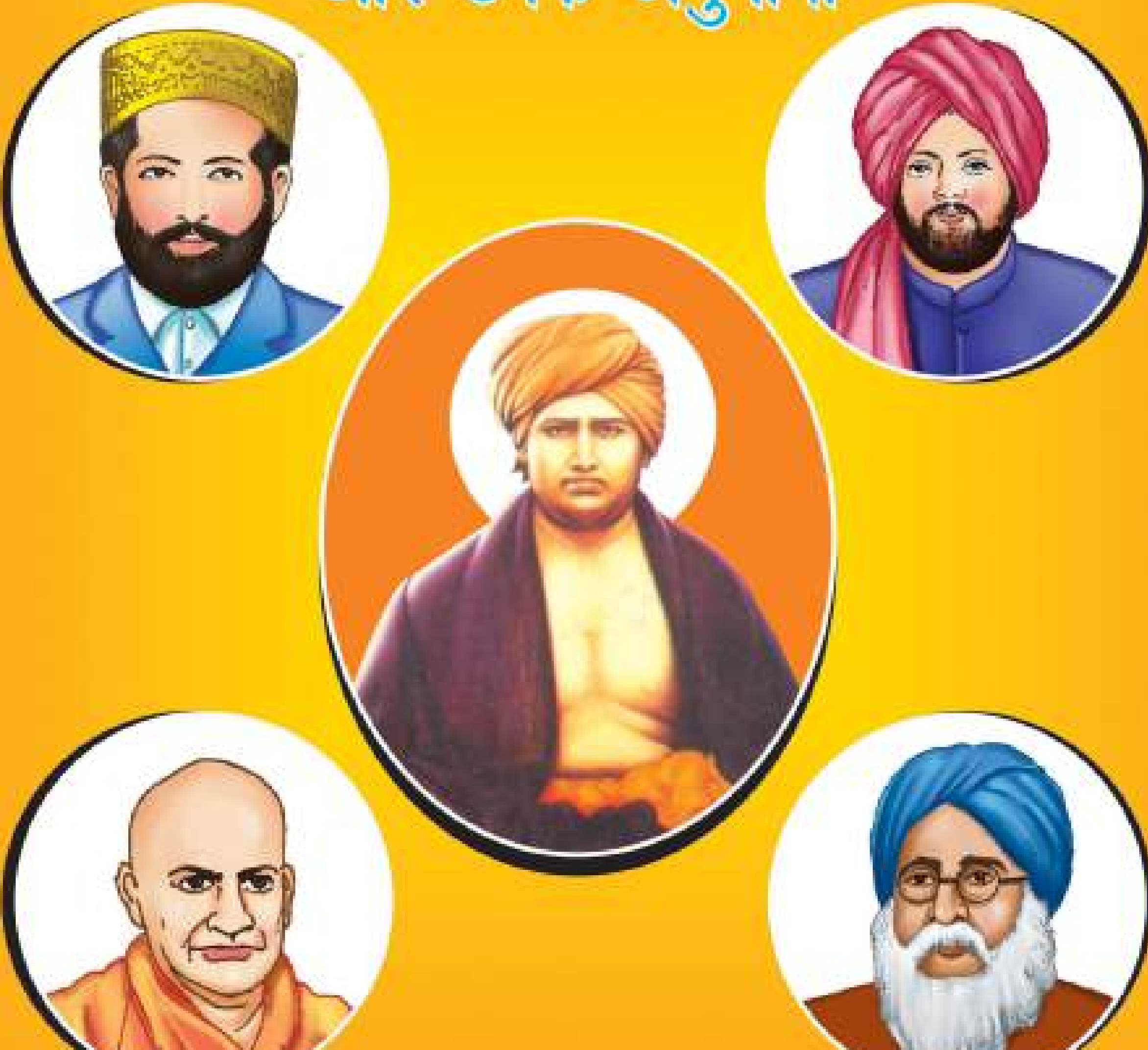

(संक्षिप्त जीवन झांकियां)

पटकथा-संवाद-चित्रांकन
भारत मकवाणा

संशोधन —
आचार्य हरिप्रसाद

महर्षि दयानन्द और उनके अनुयायी

महर्षि दयानन्द सरस्वती

सम्वत् 1881 फाल्गुन बदी दशमी, 12 फरवरी 1824 दिन शनिवार को गुजरात के मोरवी प्रान्त के ग्राम टंकारा में कर्षन जी तिवारी, जो एक धनाढ्य ज़मींदार थे, एवं सरकार की ओर से राजस्व अधिकारी नियुक्त थे। उनके घर एक सुन्दर बालक ने जन्म लिया। माता-पिता ने उनका नाम 'मूलशंकर' रखा। इसी बालक ने कालान्तर में **महर्षि दयानन्द सरस्वती** के रूप में दीक्षित होकर विश्व को **वैदिक ज्ञान** से आलोकित किया।

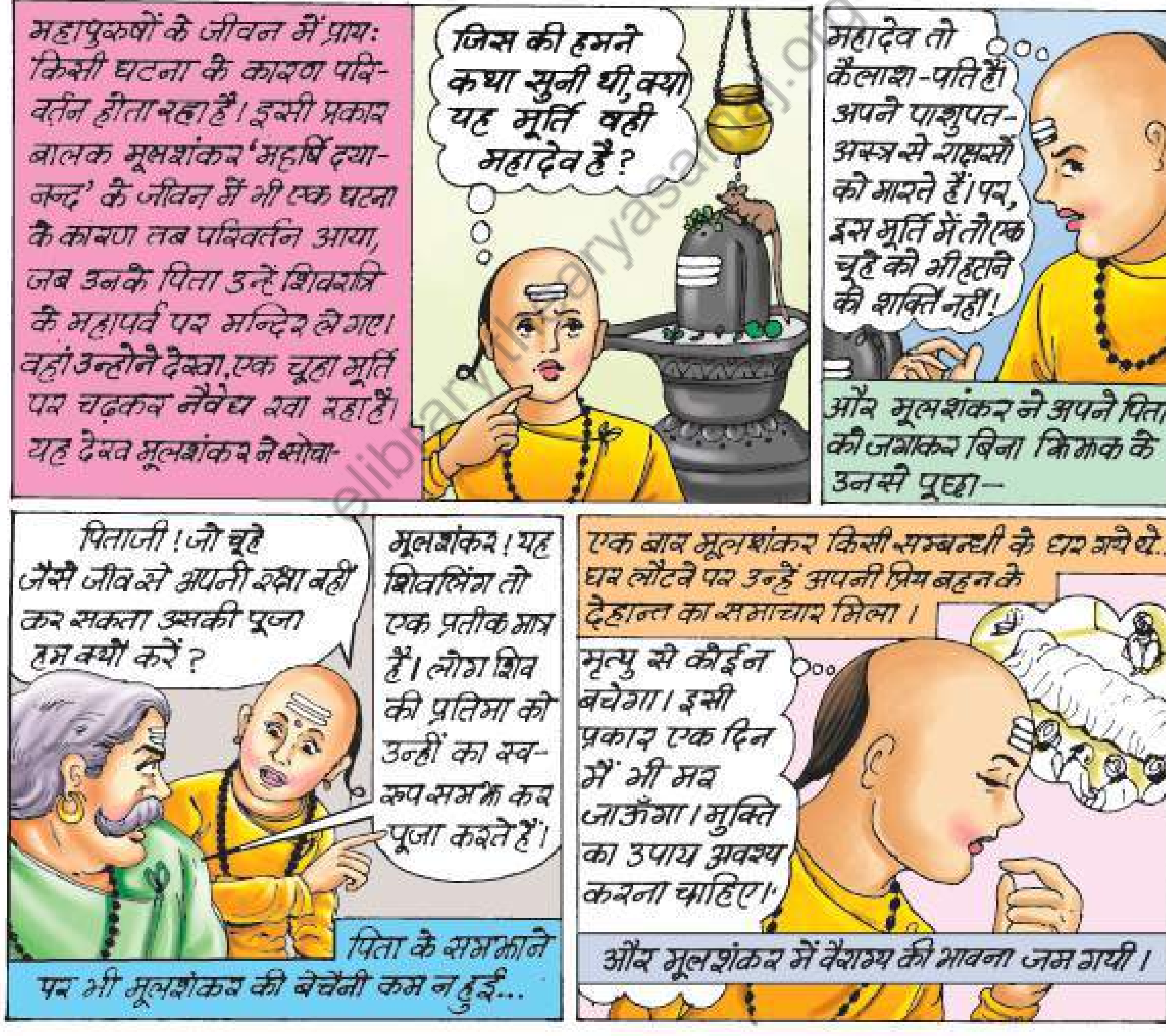

elibraryaryasamaj.org

फिर असमय चाचाजी की मृत्यु से बालक मूलशंकर को एक और झटका लगा।
जीवन क्षणभंगुर है। मौत अवश्य आनी है। इस दारुण दुःख से बचने का कोई मार्ग खोजूँ ?
फिर एक दिन मूलशंकर के पिता ने इनका सम्बन्ध पक्का कर दिया। मूलशंकर ने पिता का विरोध करना व्यर्थ समझा और...
...एक रात चुपके से वहां से प्रस्थान करना उचित समझा। और वि. सं. 1903 की ज्येष्ठ मास की रात्रि को घर से निकल गये।
इस तरह मूलशंकर जंगल में आगे बढ़ गये। मार्ग में उन्हें कुछ ढोंगी साधु मिले। मूलशंकर ने उन्हें प्रणाम किया।
बच्चा ! कहाँ से आ रहे हो, और कहाँ जा रहे हो ?
मैंने वैराग्य ले लिया है, और सच्चे गुरु की तलाश में जा रहा हूँ।
वैरागी को ये आभूषण शोभा नहीं देते, इन्हें त्याग दो।
मूलशंकर ने सभी आभूषण उतार कर साधुओं को दे दिए और आगे बढ़ गये। मार्ग में नैष्ठिक ब्रह्मचर्य की दीक्षा लेकर मूलशंकर 'शुद्धचैतन्य' बन गये।

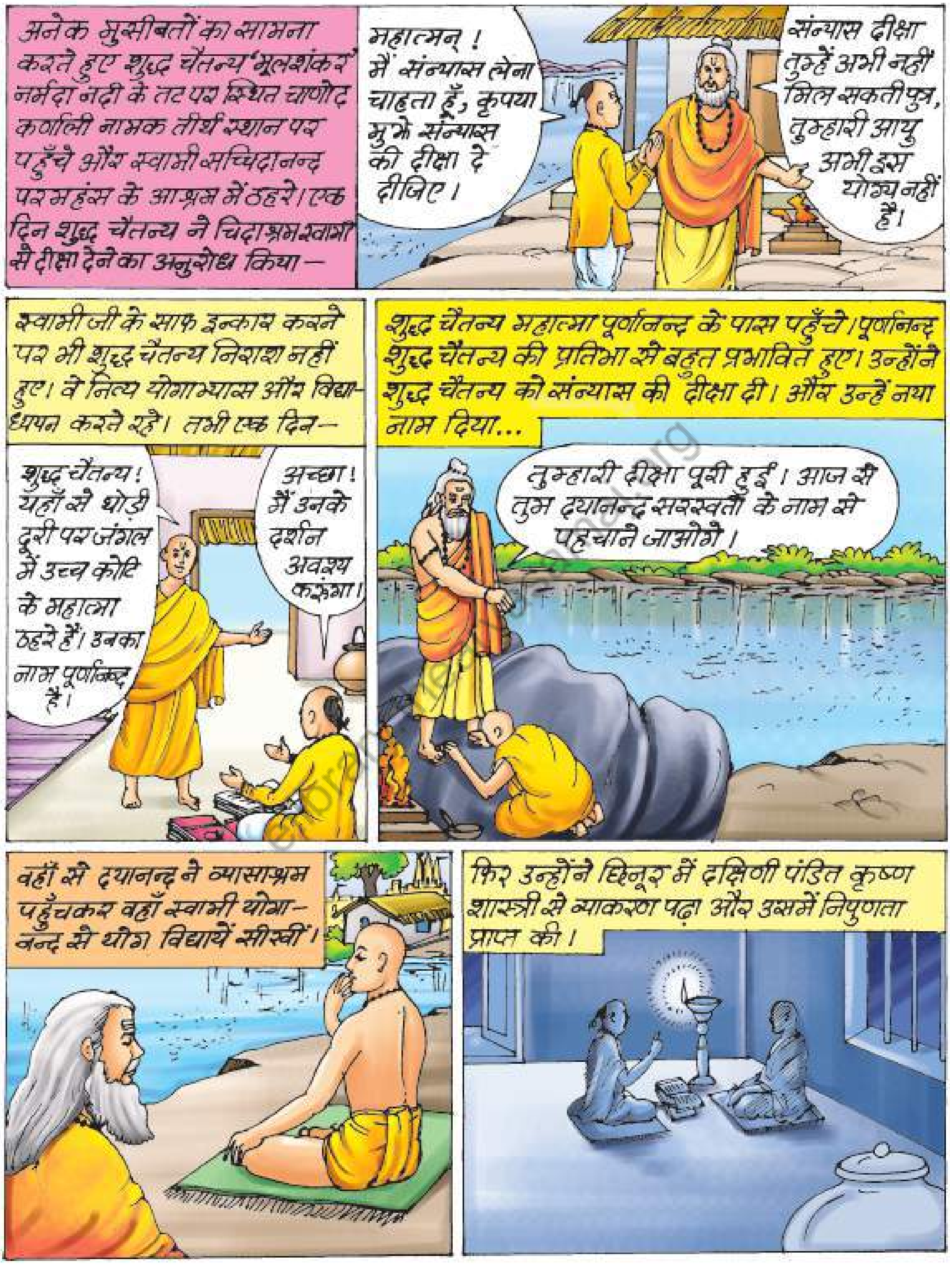
अनेक मुसीबतों का सामना करते हुए शुद्ध चैतन्य 'मूलशंकर' नर्मदा नदी के तट पर स्थित चाणोद कर्णाली नामक तीर्थ स्थान पर पहुँचे और स्वामी सच्चिदानन्द परमहंस के आश्रम में ठहरे। एक दिन शुद्ध चैतन्य ने चिदाश्रम स्वामी से दीक्षा देने का अनुरोध किया—
महात्मन्! मैं संन्यास लेना चाहता हूँ, कृपया मुझे संन्यास की दीक्षा दे दीजिए।
संन्यास दीक्षा तुम्हें अभी नहीं मिल सकती पुत्र, तुम्हारी आयु अभी इस योग्य नहीं है।
स्वामी जी के साफ इन्कार करने पर भी शुद्ध चैतन्य निराश नहीं हुए। वे नित्य योगाभ्यास और विद्या-ध्यपन करते रहे। तभी एक दिन—
शुद्ध चैतन्य! यहाँ से थोड़ी दूरी पर जंगल में उच्च कोटि के महात्मा ठहरे हैं। उनका नाम पूर्णानन्द है।
अच्छा! मैं उनके दर्शन अवश्य करूँगा।
शुद्ध चैतन्य महात्मा पूर्णानन्द के पास पहुँचे। पूर्णानन्द शुद्ध चैतन्य की प्रतिभा से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने शुद्ध चैतन्य को संन्यास की दीक्षा दी। और उन्हें नया नाम दिया...
तुम्हारी दीक्षा पूरी हुई। आज से तुम दयानन्द सरस्वती के नाम से पहचाने जाओगे।
वहाँ से दयानन्द ने व्यासाश्रम पहुँचकर वहाँ स्वामी योगानन्द से योग विद्यायें सीखीं।
फिर उन्होंने छिनूर में दक्षिणी पंडित कृष्ण शास्त्री से व्याकरण पढ़ा और उसमें निपुणता प्राप्त की।

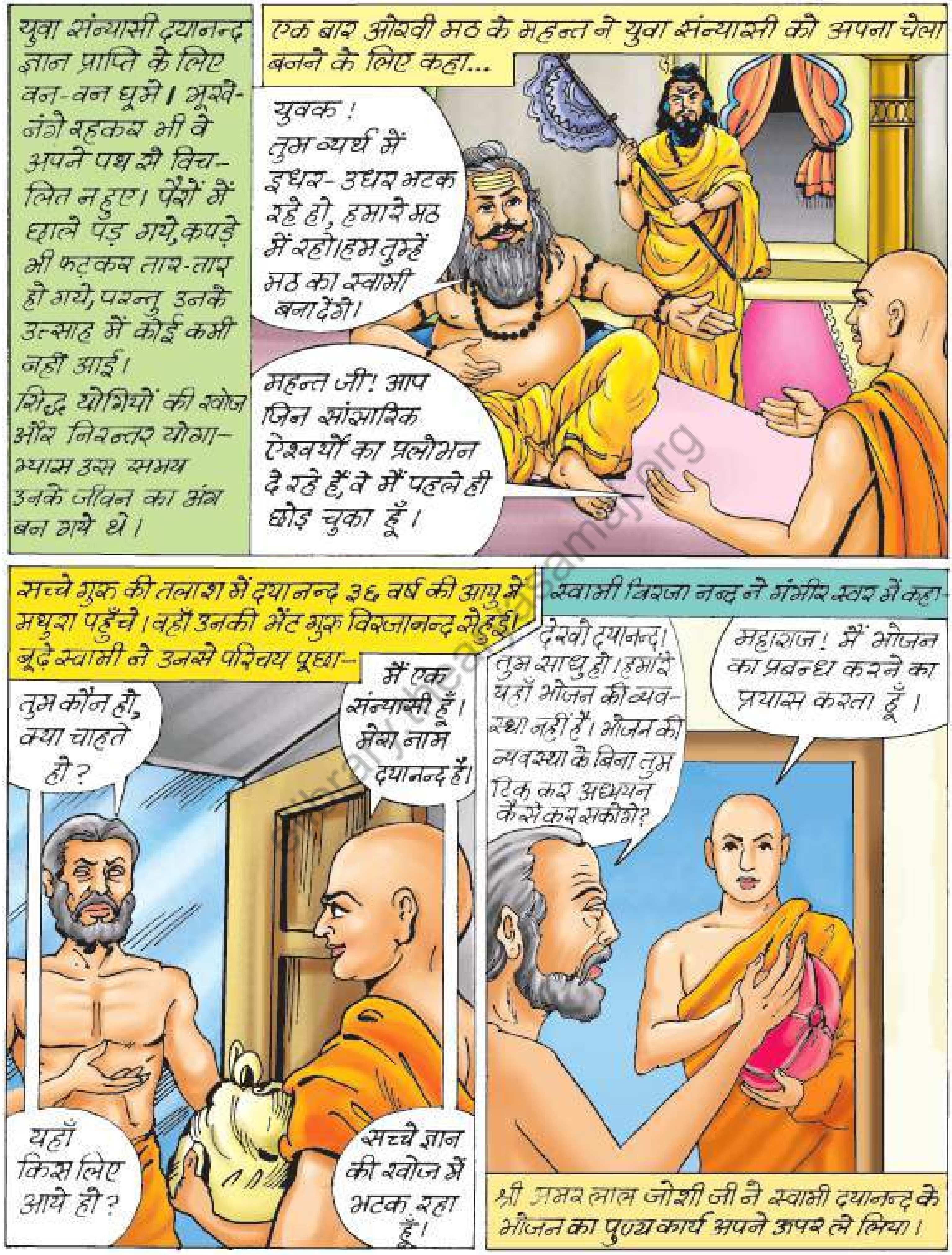
युवा संन्यासी दयानन्द ज्ञान प्राप्ति के लिए वन-वन घूमे। भूखे-नंगे रहकर भी वे अपने पथ से विचलित न हुए। पैरों में छाले पड़ गये, कपड़े भी फटकर तार-तार हो गये, परन्तु उनके उत्साह में कोई कमी नहीं आई। सिद्ध योगियों की खोज और निरन्तर योगाभ्यास उस समय उनके जीवन का अंग बन गये थे।
एक बार ओखी मठ के महन्त ने युवा संन्यासी को अपना चेला बनने के लिए कहा...
युवक! तुम व्यर्थ में इधर-उधर भटक रहे हो, हमारे मठ में रहो। हम तुम्हें मठ का स्वामी बना देंगे।
महन्त जी! आप जिन सांसारिक ऐश्वर्यों का प्रलोभन दे रहे हैं, वे मैं पहले ही छोड़ चुका हूँ।
सच्चे गुरु की तलाश में दयानन्द ३६ वर्ष की आयु में मथुरा पहुँचे। वहाँ उनकी भेंट गुरु विरजानन्द से हुई। बूढ़े स्वामी ने उनसे परिचय पूछा--
तुम कौन हो, क्या चाहते हो?
मैं एक संन्यासी हूँ। मेरा नाम दयानन्द है।
यहाँ किस लिए आये हो?
सच्चे ज्ञान की खोज में भटक रहा हूँ।
स्वामी विरजानन्द ने गंभीर स्वर में कहा-
देखो दयानन्द! तुम साधु हो। हमारे यहाँ भोजन की व्यवस्था नहीं है। भोजन की व्यवस्था के बिना तुम टिक कर अध्ययन कैसे कर सकोगे?
महाराज! मैं भोजन का प्रबन्ध करने का प्रयास करता हूँ।
श्री अमर लाल जोशी जी ने स्वामी दयानन्द के भोजन का पुण्य कार्य अपने ऊपर ले लिया।

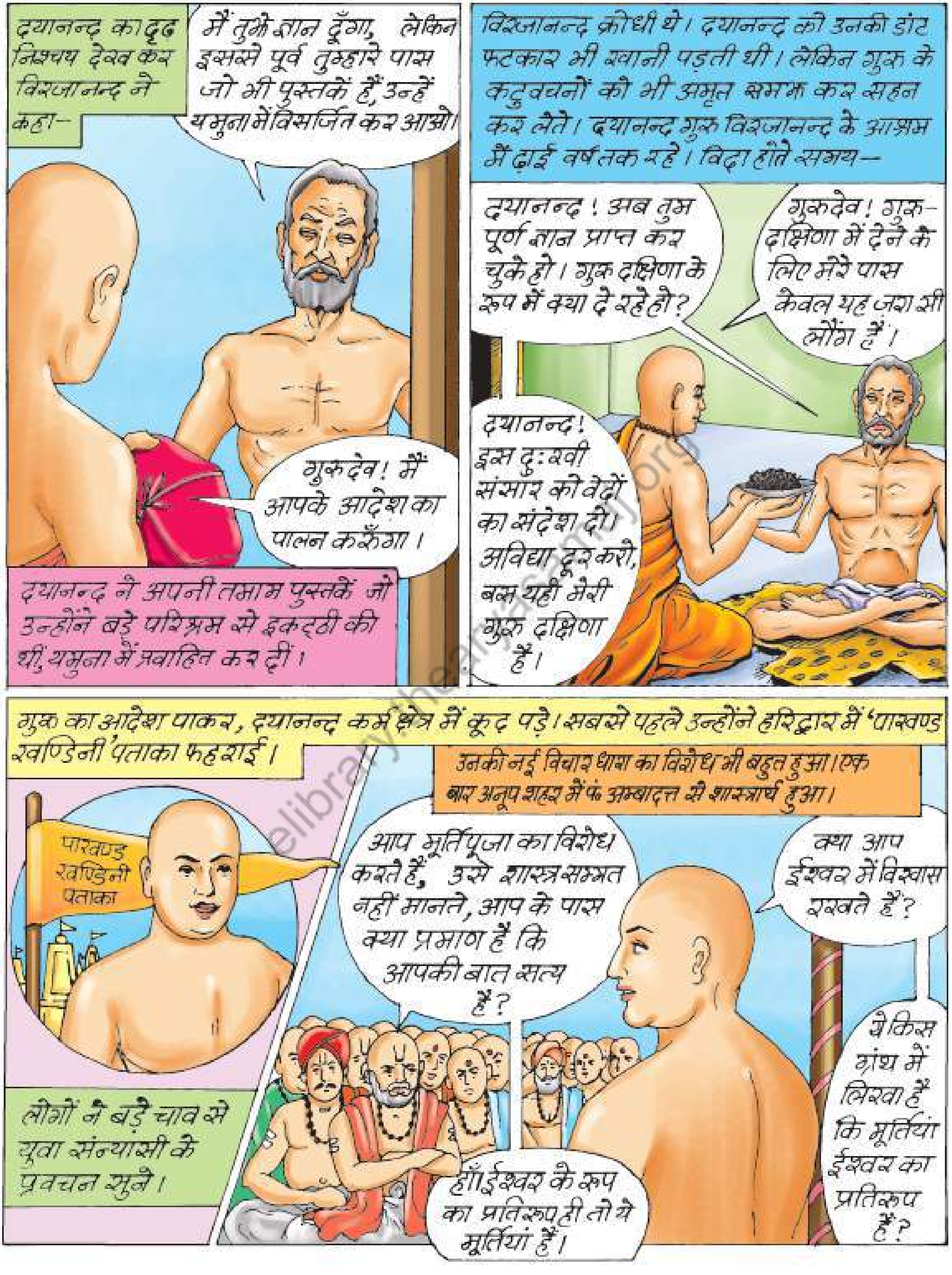
दयानन्द का दृढ़ निश्चय देख कर विरजानन्द ने कहा–
मैं तुम्हें ज्ञान दूँगा, लेकिन इससे पूर्व तुम्हारे पास जो भी पुस्तकें हैं, उन्हें यमुना में विसर्जित कर आओ।
गुरुदेव! मैं आपके आदेश का पालन करूँगा।
दयानन्द ने अपनी तमाम पुस्तकें जो उन्होंने बड़े परिश्रम से इकट्ठी की थीं, यमुना में प्रवाहित कर दीं।
विरजानन्द क्रोधी थे। दयानन्द को उनकी डांट फटकार भी खानी पड़ती थी। लेकिन गुरु के कटुवचनों को भी अमृत समझ कर सहन कर लेते। दयानन्द गुरु विरजानन्द के आश्रम में ढाई वर्ष तक रहे। विदा होते समय–
दयानन्द! अब तुम पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर चुके हो। गुरु दक्षिणा के रूप में क्या दे रहे हो?
गुरुदेव! गुरु-दक्षिणा में देने के लिए मेरे पास केवल यह जरा सी लौंग है।
दयानन्द! इस दुःखी संसार को वेदों का संदेश दो। अविद्या दूर करो, बस यही मेरी गुरु दक्षिणा है।
गुरु का आदेश पाकर, दयानन्द कर्म क्षेत्र में कूद पड़े। सबसे पहले उन्होंने हरिद्वार में 'पाखण्ड खण्डिनी' पताका फहराई।
पाखण्ड खण्डिनी पताका
लोगों ने बड़े चाव से युवा संन्यासी के प्रवचन सुने।
उनकी नई विचार धारा का विरोध भी बहुत हुआ। एक बार अनूप शहर में पं. अम्बादत्त से शास्त्रार्थ हुआ।
आप मूर्तिपूजा का विरोध करते हैं, उसे शास्त्रसम्मत नहीं मानते, आप के पास क्या प्रमाण है कि आपकी बात सत्य है?
क्या आप ईश्वर में विश्वास रखते हैं?
हाँ! ईश्वर के रूप का प्रतिरूप ही तो ये मूर्तियां हैं।
वे किस ग्रंथ में लिखा है कि मूर्तियां ईश्वर का प्रतिरूप हैं?

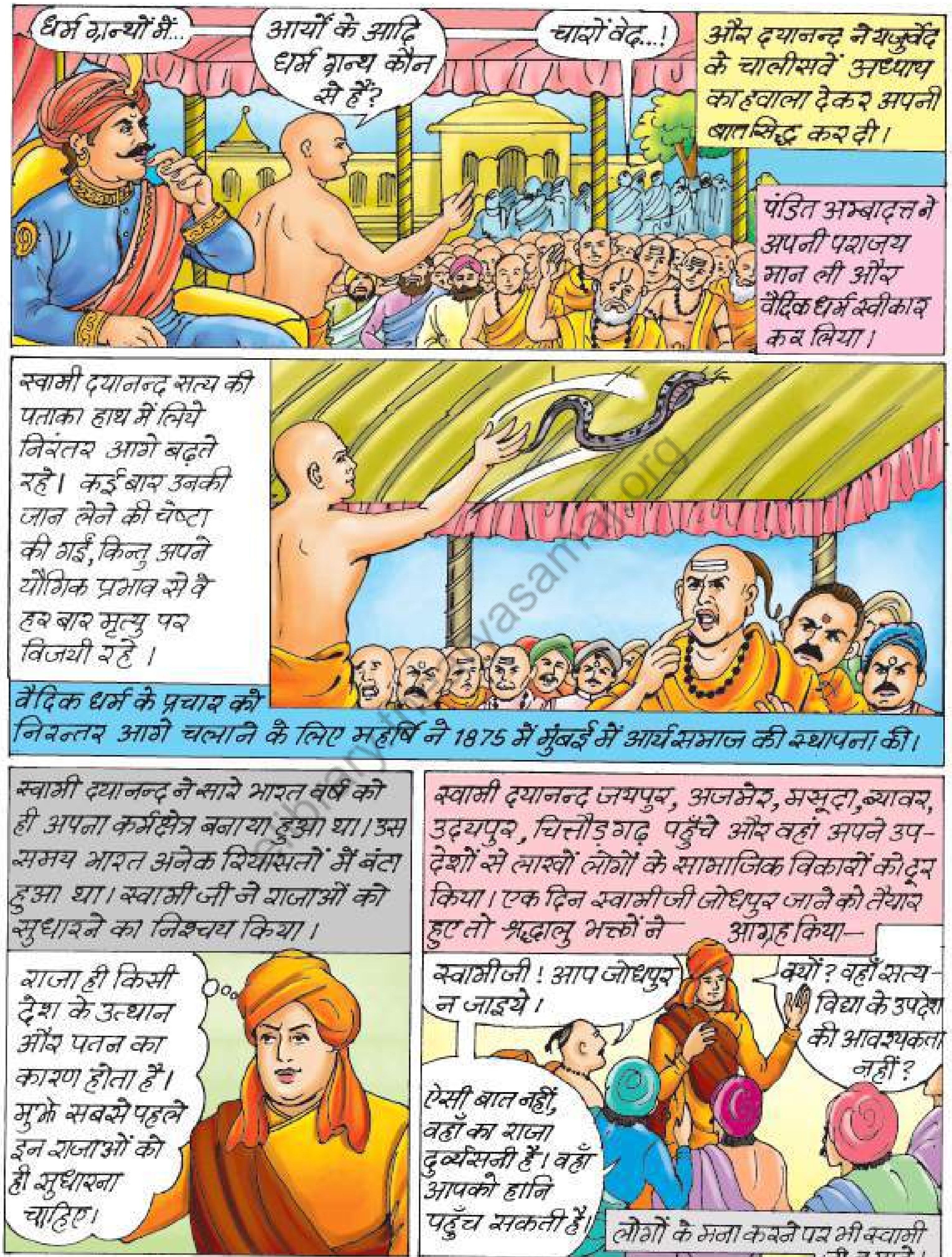

धर्म ग्रन्थों में...
आर्यों के आदि धर्म ग्रन्थ कौन से हैं?
चारों वेद...!
और दयानन्द ने यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय का हवाला देकर अपनी बात सिद्ध कर दी।
पंडित अम्बादत्त ने अपनी पराजय मान ली और वैदिक धर्म स्वीकार कर लिया।
स्वामी दयानन्द सत्य की पताका हाथ में लिये निरंतर आगे बढ़ते रहे। कई बार उनकी जान लेने की चेष्टा की गई, किन्तु अपने यौगिक प्रभाव से वे हर बार मृत्यु पर विजयी रहे।
वैदिक धर्म के प्रचार को निरन्तर आगे चलाने के लिए महर्षि ने 1875 में मुंबई में आर्यसमाज की स्थापना की।
स्वामी दयानन्द ने सारे भारत वर्ष को ही अपना कर्मक्षेत्र बनाया हुआ था। उस समय भारत अनेक रियासतों में बंटा हुआ था। स्वामी जी ने राजाओं को सुधारने का निश्चय किया।
राजा ही किसी देश के उत्थान और पतन का कारण होता है। मुझे सबसे पहले इन राजाओं को ही सुधारना चाहिए।
स्वामी दयानन्द जयपुर, अजमेर, मसूदा, ब्यावर, उदयपुर, चित्तौड़गढ़ पहुँचे और वहां अपने उपदेशों से लाखों लोगों के सामाजिक विकारों को दूर किया। एक दिन स्वामीजी जोधपुर जाने को तैयार हुए तो श्रद्धालु भक्तों ने आग्रह किया–
स्वामीजी! आप जोधपुर न जाइये।
क्यों? वहाँ सत्य-विद्या के उपदेश की आवश्यकता नहीं?
ऐसी बात नहीं, वहाँ का राजा दुर्व्यसनी है। वहाँ आपको हानि पहुँच सकती है।
लोगों के मना करने पर भी स्वामी जी न माने।

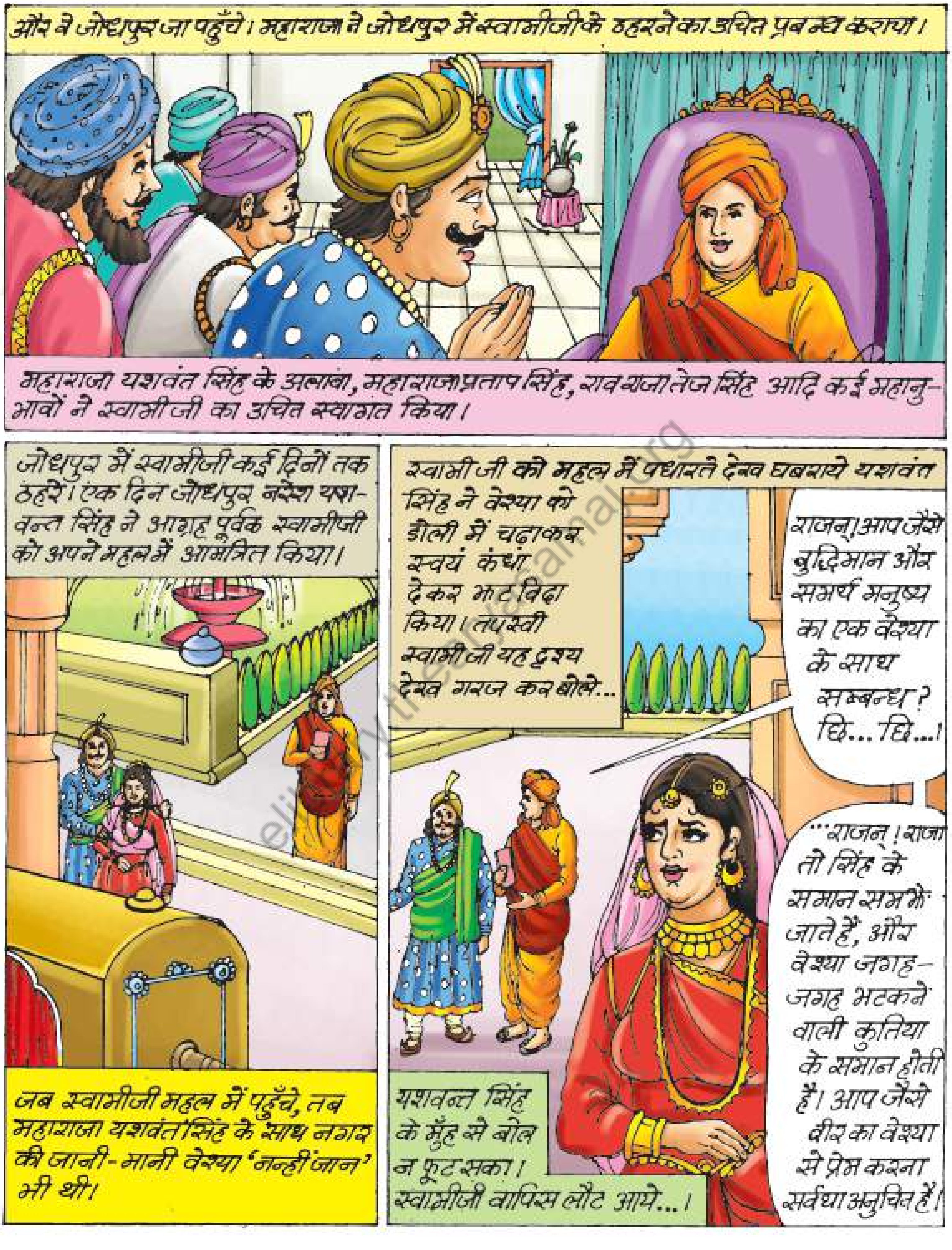

और वे जोधपुर जा पहुँचे। महाराजा ने जोधपुर में स्वामीजी के ठहरने का उचित प्रबन्ध कराया।
महाराजा यशवंत सिंह के अलावा, महाराजा प्रताप सिंह, राव राजा तेज सिंह आदि कई महानु-भावों ने स्वामी जी का उचित स्वागत किया।
जोधपुर में स्वामीजी कई दिनों तक ठहरे। एक दिन जोधपुर नरेश यश-वन्त सिंह ने आग्रह पूर्वक स्वामीजी को अपने महल में आमंत्रित किया।
जब स्वामीजी महल में पहुँचे, तब महाराजा यशवंत सिंह के साथ नगर की जानी-मानी वेश्या 'नन्हीं जान' भी थी।
स्वामी जी को महल में पधारते देख घबराये यशवंत सिंह ने वेश्या को डोली में चढ़ाकर स्वयं कंधा देकर झट विदा किया। तपस्वी स्वामीजी यह दृश्य देख गरज कर बोले...
राजन्! आप जैसे बुद्धिमान और समर्थ मनुष्य का एक वेश्या के साथ सम्बन्ध? छि... छि...!
...राजन्! राजा तो सिंह के समान समझे जाते हैं, और वेश्या जगह-जगह भटकने वाली कुतिया के समान होती है। आप जैसे वीर का वेश्या से प्रेम करना सर्वथा अनुचित है।
यशवन्त सिंह के मुँह से बोल न फूट सका। स्वामीजी वापिस लौट आये...।

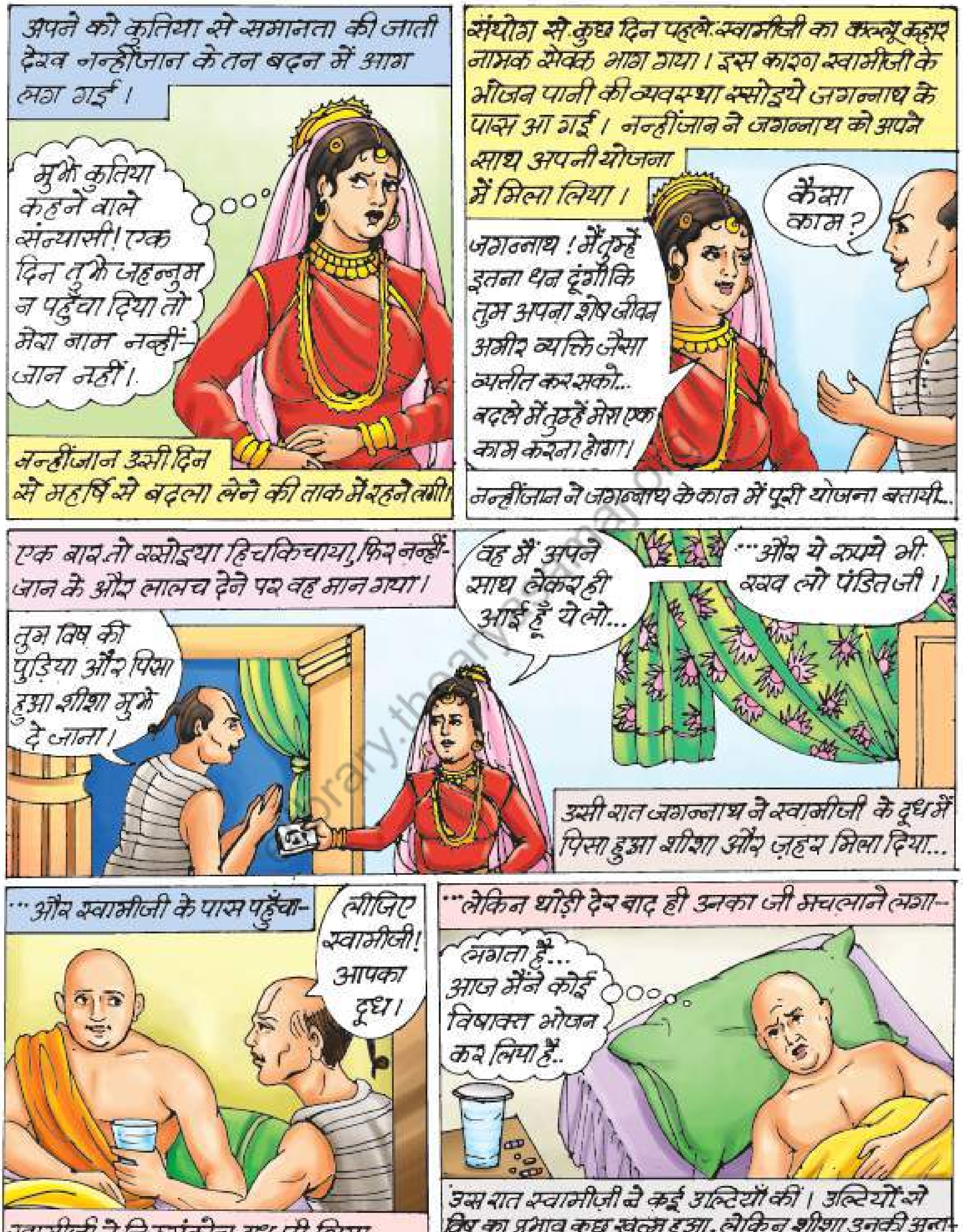

अपने को कुतिया से समानता की जाती देख नन्हींजान के तन बदन में आग लग गई।
मुझे कुतिया कहने वाले संन्यासी! एक दिन तुझे जहन्नुम न पहुँचा दिया तो मेरा नाम नन्हीं-जान नहीं।
नन्हींजान उसी दिन से महर्षि से बदला लेने की ताक में रहने लगी।
संयोग से कुछ दिन पहले स्वामीजी का कल्लू कहार नामक सेवक भाग गया। इस कारण स्वामीजी के भोजन पानी की व्यवस्था रसोइये जगन्नाथ के पास आ गई। नन्हींजान ने जगन्नाथ को अपने साथ अपनी योजना में मिला लिया।
जगन्नाथ! मैं तुम्हें इतना धन दूंगी कि तुम अपना शेष जीवन अमीर व्यक्ति जैसा व्यतीत कर सको... बदले में तुम्हें मेरा एक काम करना होगा।
कैसा काम?
नन्हींजान ने जगन्नाथ के कान में पूरी योजना बतायी...
एक बार तो रसोइया हिचकिचाया, फिर नन्हीं-जान के और लालच देने पर वह मान गया।
तुम विष की पुड़िया और पिसा हुआ शीशा मुझे दे जाना।
वह मैं अपने साथ लेकर ही आई हूँ ये लो...
...और ये रुपये भी रख लो पंडित जी।
उसी रात जगन्नाथ ने स्वामीजी के दूध में पिसा हुआ शीशा और ज़हर मिला दिया...
...और स्वामीजी के पास पहुँचा-
लीजिए स्वामीजी! आपका दूध।
स्वामीजी ने निस्संकोच दूध पी लिया...
...लेकिन थोड़ी देर बाद ही उनका जी मचलाने लगा-
लगता है... आज मैंने कोई विषाक्त भोजन कर लिया है..
उस रात स्वामीजी ने कई उल्टियाँ कीं। उल्टियों से विष का प्रभाव कुछ खत्म हुआ, लेकिन शीशा उनकी अंत-ड़ियों में बैठ गया था, अतः उनकी वेदना बढ़ती जा रही थी।

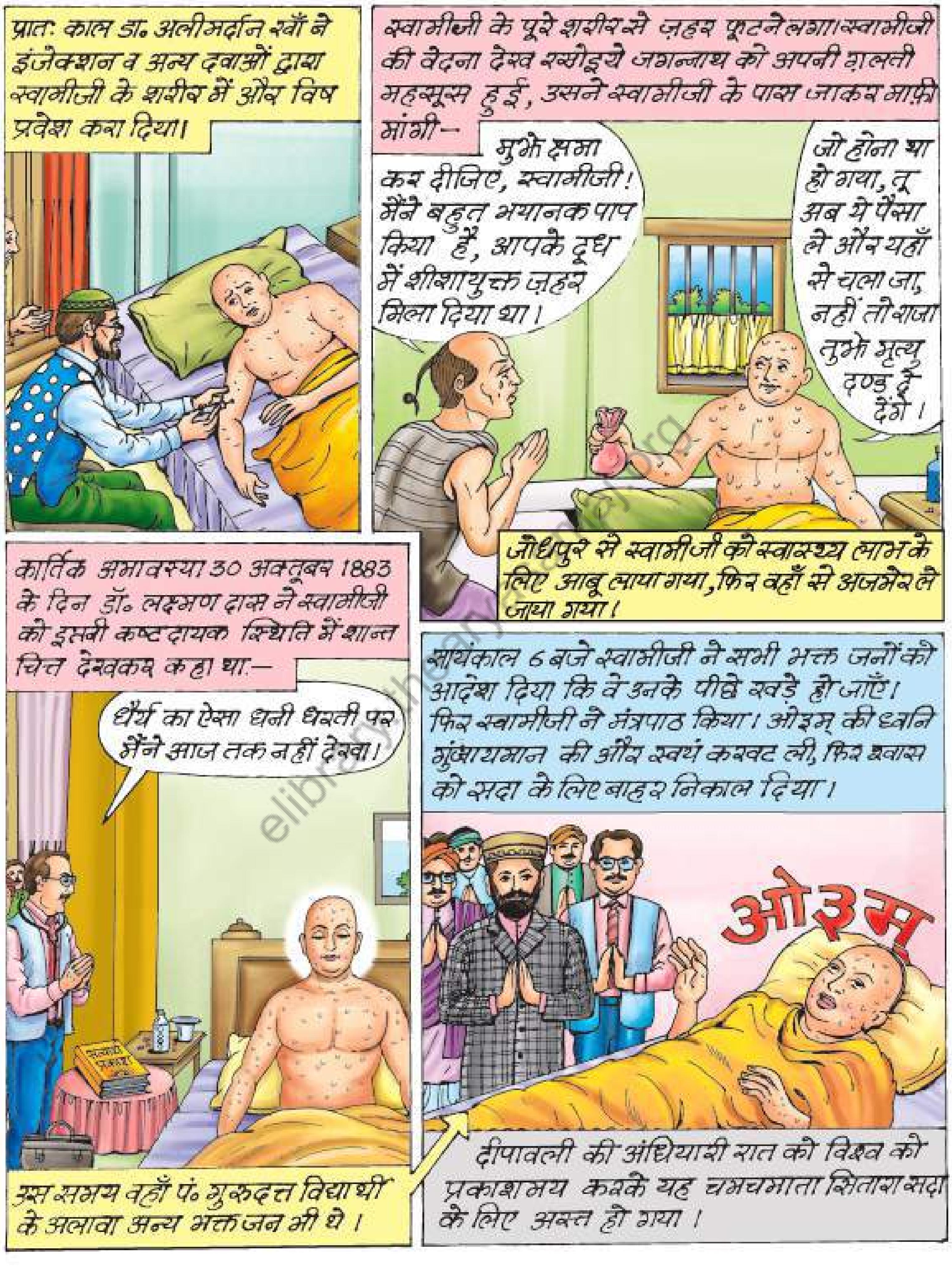
प्रातः काल डॉ. अलीमर्दान खाँ ने इंजेक्शन व अन्य दवाओं द्वारा स्वामीजी के शरीर में और विष प्रवेश करा दिया।
स्वामीजी के पूरे शरीर से ज़हर फूटने लगा। स्वामीजी की वेदना देख रसोइये जगन्नाथ को अपनी ग़लती महसूस हुई, उसने स्वामीजी के पास जाकर माफ़ी मांगी–
मुझे क्षमा कर दीजिए, स्वामीजी! मैंने बहुत भयानक पाप किया है, आपके दूध में शीशायुक्त ज़हर मिला दिया था।
जो होना था हो गया, तू अब ये पैसा ले और यहाँ से चला जा, नहीं तो राजा तुझे मृत्यु दण्ड दे देंगे।
जोधपुर से स्वामीजी को स्वास्थ्य लाभ के लिए आबू लाया गया, फिर वहाँ से अजमेर ले जाया गया।
कार्तिक अमावस्या 30 अक्तूबर 1883 के दिन डॉ. लक्ष्मण दास ने स्वामीजी को इसकी कष्टदायक स्थिति में शान्त चित्त देखकर कहा था–
धैर्य का ऐसा धनी धरती पर मैंने आज तक नहीं देखा।
उस समय वहाँ पं. गुरुदत्त विद्यार्थी के अलावा अन्य भक्त जन भी थे।
सायंकाल 6 बजे स्वामीजी ने सभी भक्त जनों को आदेश दिया कि वे उनके पीछे खड़े हो जाएँ। फिर स्वामीजी ने मंत्रपाठ किया। ओ३म् की ध्वनि गुंजायमान की और स्वयं करवट ली, फिर श्वास को सदा के लिए बाहर निकाल दिया।
ओ३म्
दीपावली की अंधियारी रात को विश्व को प्रकाशमय करके यह चमचमाता सितारा सदा के लिए अस्त हो गया।

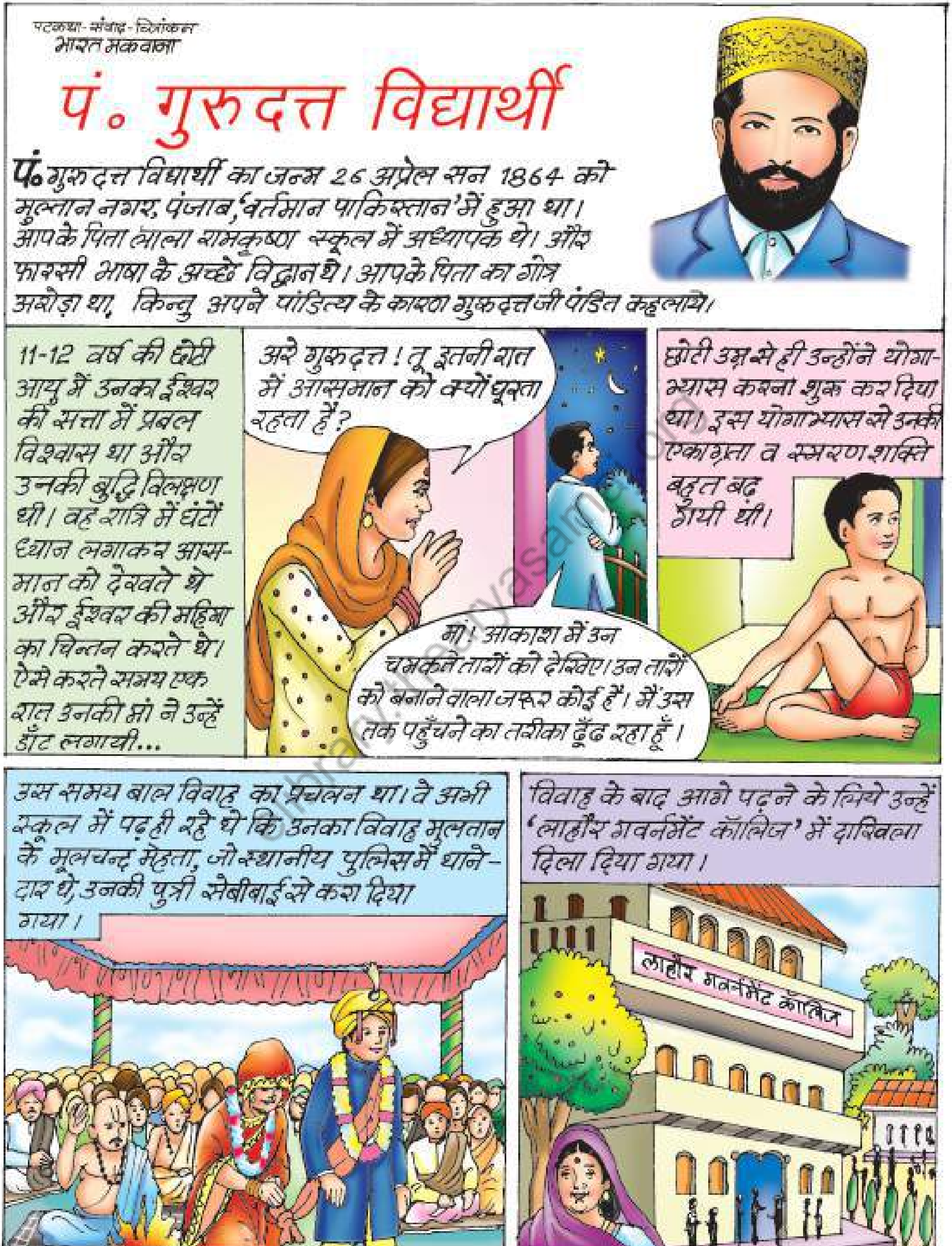
पटकथा-संवाद-चित्रांकन
भारत मकवाणा
पं० गुरुदत्त विद्यार्थी
पं० गुरुदत्त विद्यार्थी का जन्म 26 अप्रेल सन 1864 को मुल्तान नगर, पंजाब, 'वर्तमान पाकिस्तान' में हुआ था। आपके पिता लाला रामकृष्ण स्कूल में अध्यापक थे। और फारसी भाषा के अच्छे विद्वान थे। आपके पिता का गोत्र अरोड़ा था, किन्तु अपने पांडित्य के कारण गुरुदत्त जी पंडित कहलाये।
11-12 वर्ष की छोटी आयु में उनका ईश्वर की सत्ता में प्रबल विश्वास था और उनकी बुद्धि विलक्षण थी। वह रात्रि में घंटों ध्यान लगाकर आसमान को देखते थे और ईश्वर की महिमा का चिन्तन करते थे। ऐसे करते समय एक रात उनकी मां ने उन्हें डाँट लगायी...
अरे गुरुदत्त! तू इतनी रात में आसमान को क्यों घूरता रहता है?
माँ! आकाश में उन चमकते तारों को देखिए। उन तारों को बनाने वाला जरूर कोई है। मैं उस तक पहुँचने का तरीका ढूँढ रहा हूँ।
छोटी उम्र से ही उन्होंने योगाभ्यास करना शुरू कर दिया था। इस योगाभ्यास से उनकी एकाग्रता व स्मरण शक्ति बहुत बढ़ गयी थी।
उस समय बाल विवाह का प्रचलन था। वे अभी स्कूल में पढ़ ही रहे थे कि उनका विवाह मुलतान के मूलचन्द मेहता, जो स्थानीय पुलिस में थानेदार थे, उनकी पुत्री सेबीबाई से करा दिया गया।
विवाह के बाद आगे पढ़ने के लिये उन्हें 'लाहौर गवर्नमेंट कॉलिज' में दाखिला दिला दिया गया।
लाहौर गवर्नमेंट कॉलिज

elibrary.thearyasamaj.org

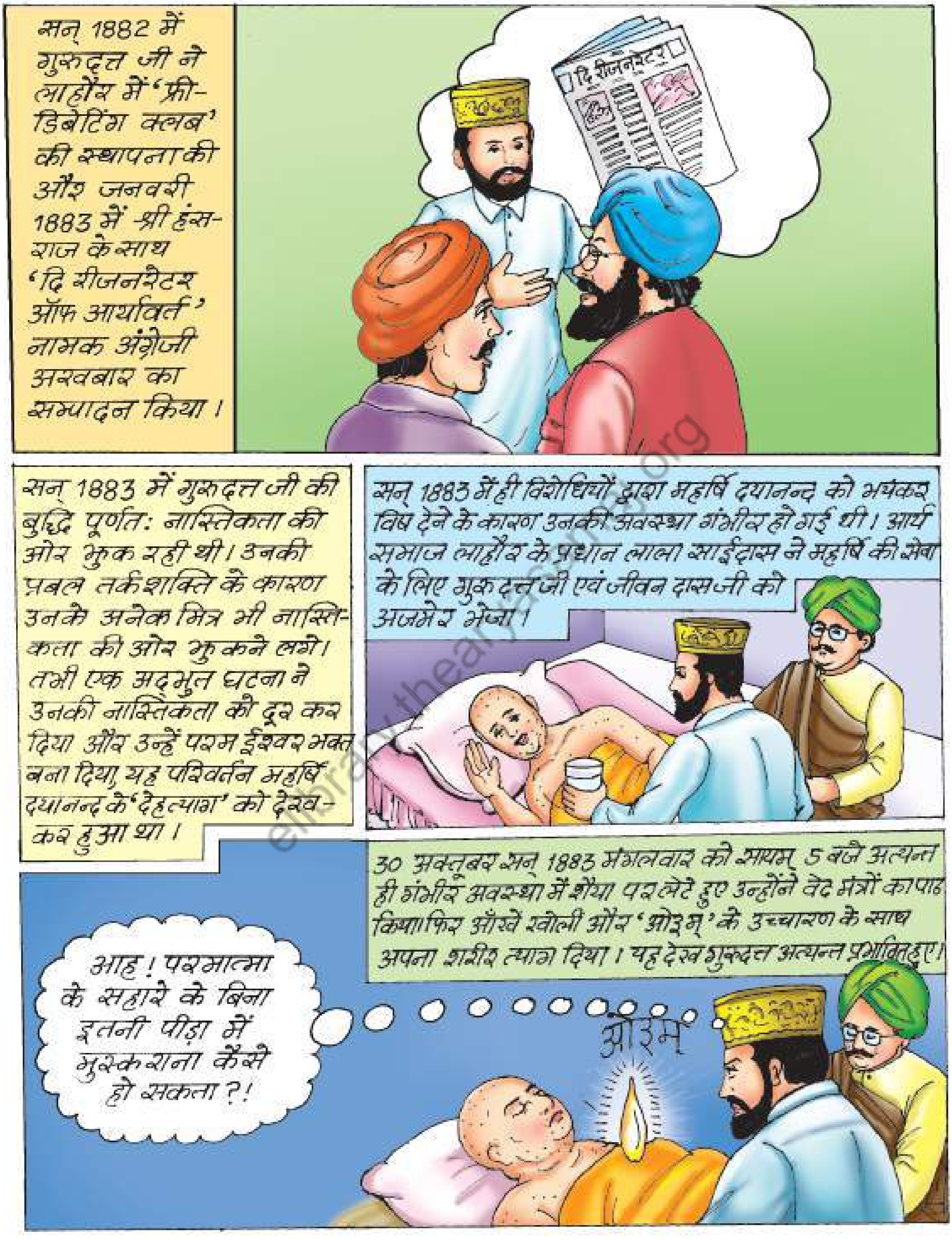

elibrary.thearyasamaj.org

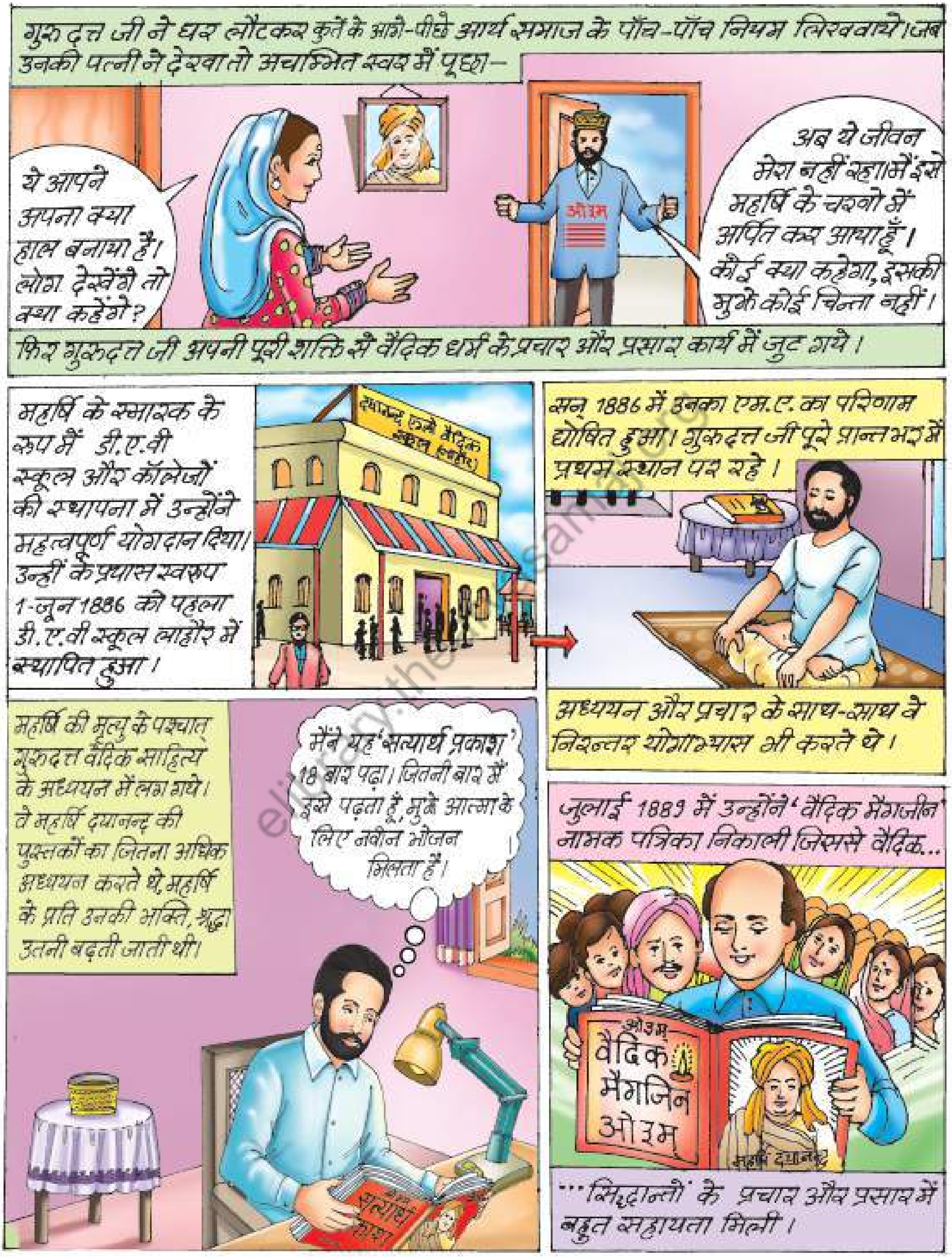

elibrary.thearyasamaj.org

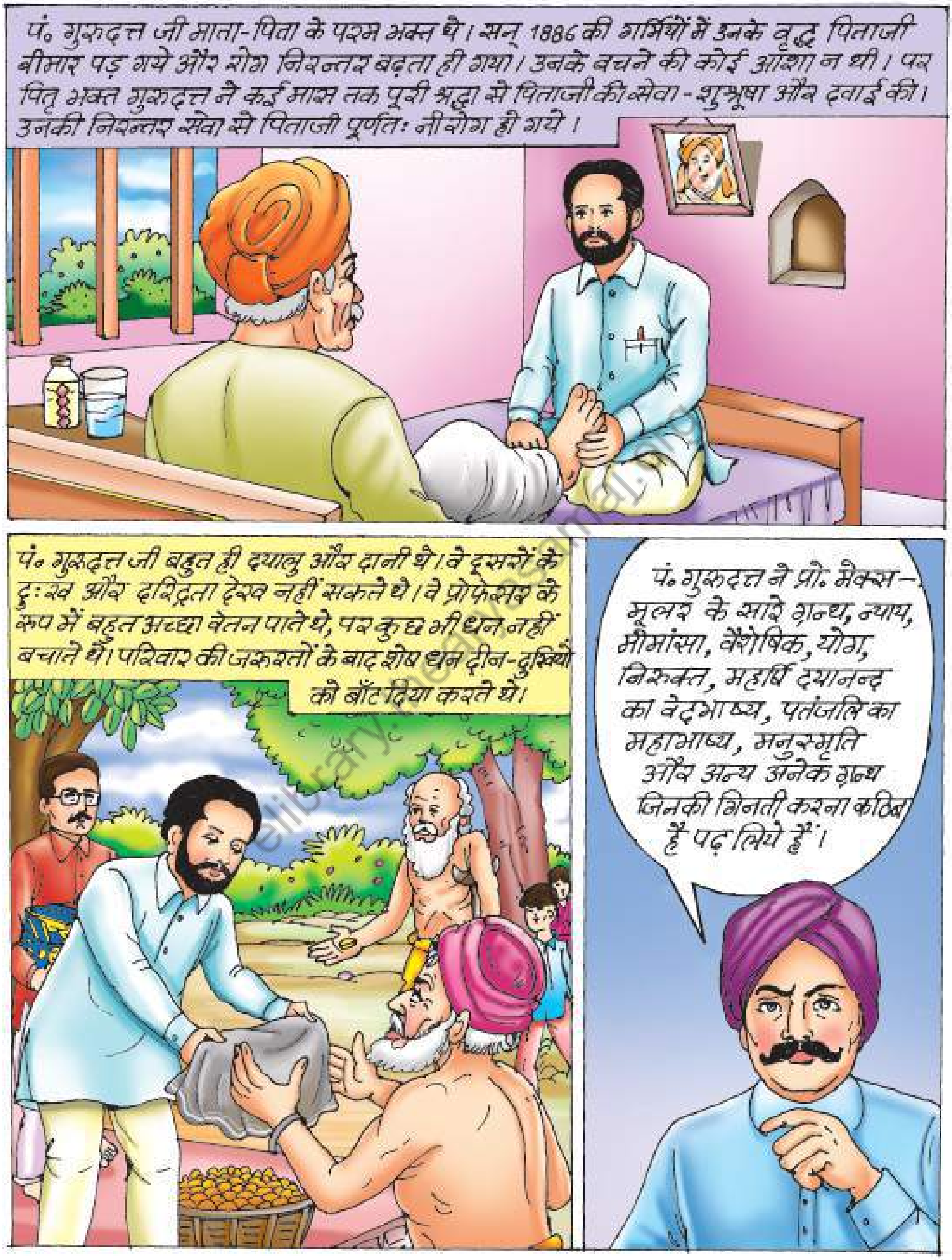
पं० गुरुदत्त जी माता-पिता के परम भक्त थे। सन् 1886 की गर्मियों में उनके वृद्ध पिताजी बीमार पड़ गये और रोग निरन्तर बढ़ता ही गया। उनके बचने की कोई आशा न थी। पर पितृ भक्त गुरुदत्त ने कई मास तक पूरी श्रद्धा से पिताजी की सेवा-शुश्रूषा और दवाई की। उनकी निरन्तर सेवा से पिताजी पूर्णतः नीरोग हो गये।
पं० गुरुदत्त जी बहुत ही दयालु और दानी थे। वे दूसरों के दुःख और दरिद्रता देख नहीं सकते थे। वे प्रोफेसर के रूप में बहुत अच्छा वेतन पाते थे, पर कुछ भी धन नहीं बचाते थे। परिवार की जरूरतों के बाद शेष धन दीन-दुखियों को बाँट दिया करते थे।
पं० गुरुदत्त ने प्रो० मैक्स-मूलर के सारे ग्रन्थ, न्याय, मीमांसा, वैशेषिक, योग, निरुक्त, महर्षि दयानन्द का वेदभाष्य, पतंजलि का महाभाष्य, मनुस्मृति और अन्य अनेक ग्रन्थ जिनकी गिनती करना कठिन है पढ़ लिये हैं।

आर्य समाज के प्रचार के दौरान उनकी भेंट चार संन्यासियों से हुई। चारों अद्वैत से सम्बंध रखते थे और प्रकांड पंडित समझे जाते थे। किन्तु पंडित जी के सम्पर्क में आते ही वे अति प्रभावित हुए और नवीन वेदान्त को छोड़कर वैदिक धर्म में आस्था रखने लगे।
ओ३म्
आर्य समाज प्रचार
वे कर्म के धनी थे। अत्यधिक व्यस्त रहने के कारण, उन्हें खान-पान तक की सुध नहीं रहती थी, वे घंटों लेखन, अध्यापन और प्रवचन कार्य में व्यस्त रहते थे।
फलस्वरूप सन् 1889 के सितम्बर मास में वे गंभीर रूप से बीमार हो गये।
बीमारी की हालत में भी वे 'आर्य सभा पेशावर' के उत्सव में भाग लेने पहुँचे।
ओ३म्
आर्य सभा
पेशावर

उनके अन्दर लगन और उत्साह का प्रबल समुद्र था, जो उन्हें निरन्तर कर्म करने की प्रेरणा देता रहता था।
ओ३म्
अतिव्यस्तता और अति कार्य-शीलता से उनका रोग निरन्तर बढ़ता ही गया। बहुत इलाज कराये गये... किन्तु रोग का निदान न हुआ।
परिणाम स्वरूप 19 मार्च 1889 को प्रभात के 7 बजे मात्र 26 वर्ष की अल्प-आयु में ही संस्कृत विद्या के उन सच्चे और अद्वितीय पंडित, प्राचीन ऋषियों की विद्या के सच्चे उत्तराधिकारी का देहान्त हो गया।
ओ३म्
ओ३म्
ओ३म्
ओ३म्

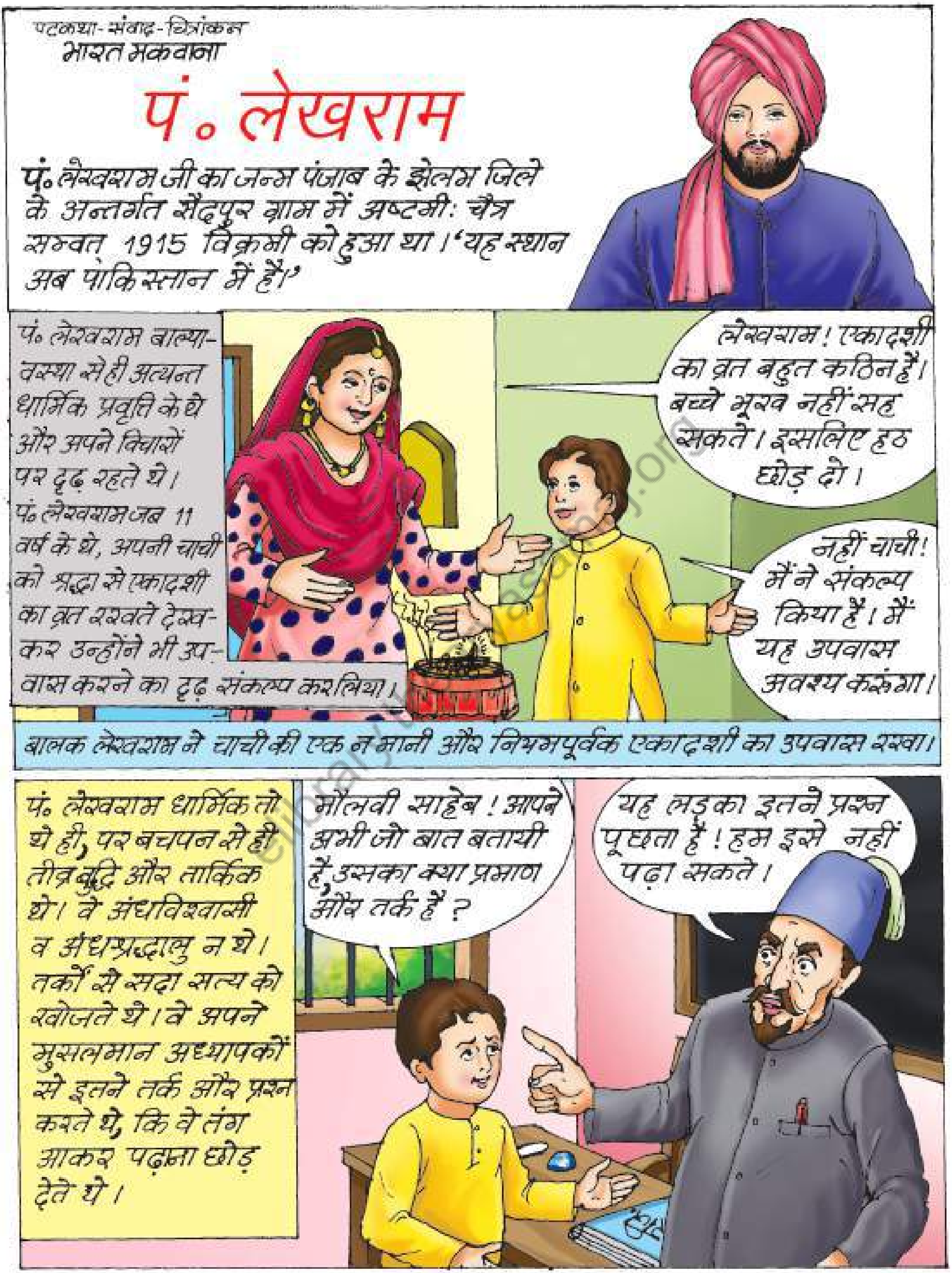
पटकथा- संवाद- चित्रांकन
भारत मकवाना
पं. लेखराम
पं. लेखराम जी का जन्म पंजाब के झेलम जिले के अन्तर्गत सैदपुर ग्राम में अष्टमी: चैत्र सम्वत् 1915 विक्रमी को हुआ था। 'यह स्थान अब पाकिस्तान में है'
पं. लेखराम बाल्यावस्था से ही अत्यन्त धार्मिक प्रवृत्ति के थे और अपने विचारों पर दृढ़ रहते थे। पं. लेखराम जब 11 वर्ष के थे, अपनी चाची को श्रद्धा से एकादशी का व्रत रखते देखकर उन्होंने भी उपवास करने का दृढ़ संकल्प कर लिया।
लेखराम! एकादशी का व्रत बहुत कठिन है। बच्चे भूख नहीं सह सकते। इसलिए हठ छोड़ दो।
नहीं चाची! मैं ने संकल्प किया है। मैं यह उपवास अवश्य करूंगा।
बालक लेखराम ने चाची की एक न मानी और नियमपूर्वक एकादशी का उपवास रखा।
पं. लेखराम धार्मिक तो थे ही, पर बचपन से ही तीव्रबुद्धि और तार्किक थे। वे अंधविश्वासी व अंधश्रद्धालु न थे। तर्कों से सदा सत्य को खोजते थे। वे अपने मुसलमान अध्यापकों से इतने तर्क और प्रश्न करते थे, कि वे तंग आकर पढ़ाना छोड़ देते थे।
मौलवी साहेब! आपने अभी जो बात बतायी है, उसका क्या प्रमाण और तर्क है?
यह लड़का इतने प्रश्न पूछता है! हम इसे नहीं पढ़ा सकते।

पं० लेखराम के पिता तारा सिंह मेहता एक सैनिक सदृश थे। वे निर्भयता और साहस के धनी थे। लेकिन इसके साथ वे धार्मिक व भावुक प्रवृत्ति के इन्सान थे। बड़े होकर लेखराम में भी अपने पिता के विचार पैदा हो गये।
जब लेखराम अपनी उर्दू और फारसी की प्रारम्भिक शिक्षा पूरी कर चुके तब उनके 'चाचा गंडाराम जो स्वयं पुलिस में इन्सपेक्टर के पद पर थे, उन्होंने लेखराम को पुलिस में भर्ती करा दिया।
पुलिस में रहते हुए इनका परिचय एक सिख धार्मिक साथी से हुआ। उस साथी की संगत में रहकर लेखराम में भी धार्मिक..... ....संस्कार जाग उठे...।
...वे पक्के कृष्ण भक्त बन गये और नियमित रूप से पूजा पाठ करने लगे।
जय! श्री कृष्ण
पेशावर में रहते उन्हें मुंशी कन्हैया लाल अलखधारी की पुस्तकें पढ़ने को मिलीं। परिणाम स्वरूप उन्हें महर्षि दयानन्द तथा आर्य-समाज का परिचय मिला। उन्होंने महर्षि के ग्रन्थ मंगाकर पूरी लगन से उनका अध्ययन किया।

library.thearyasamaj.org

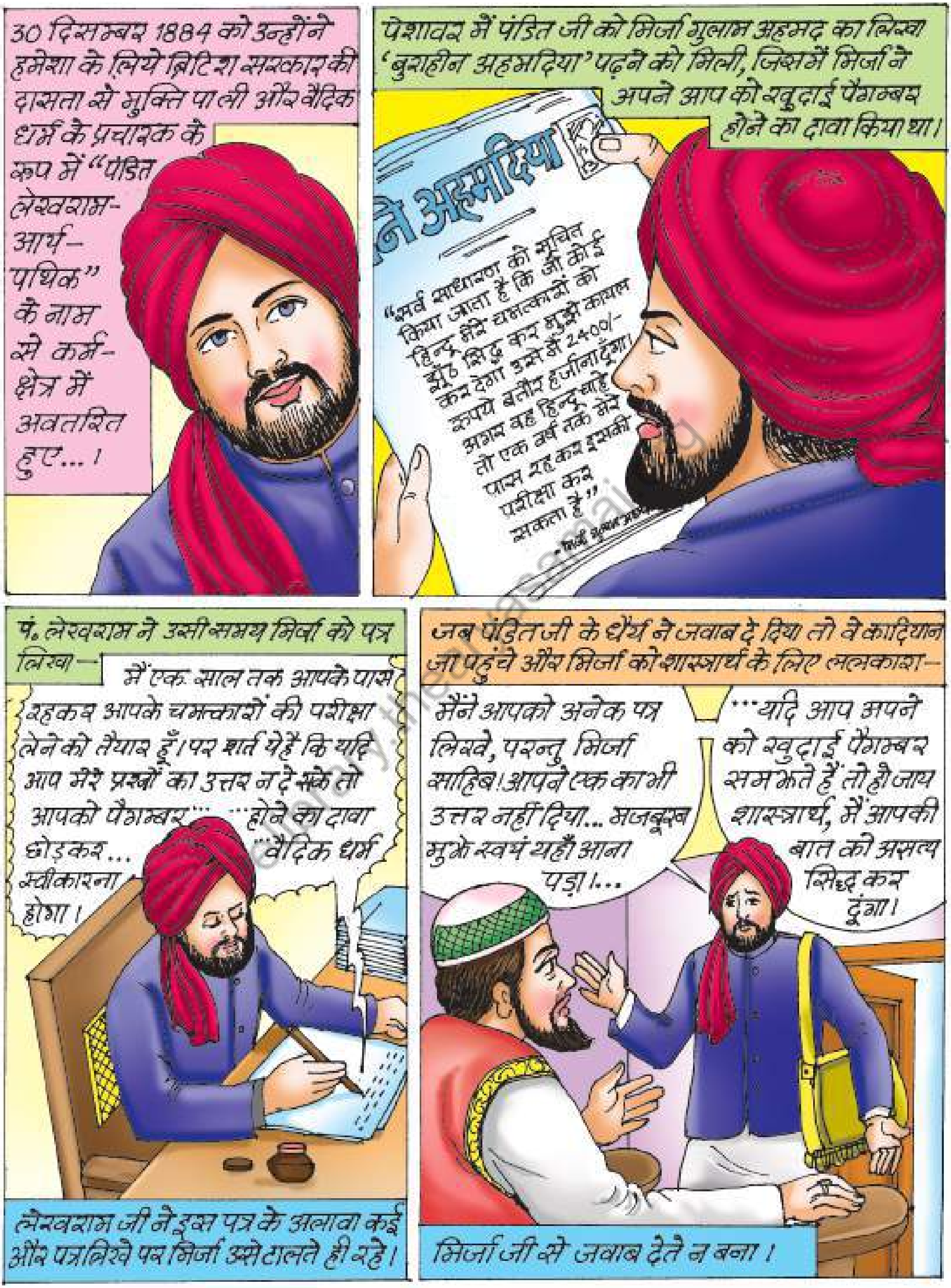
30 दिसम्बर 1884 को उन्होंने हमेशा के लिये ब्रिटिश सरकार की दासता से मुक्ति पा ली और वैदिक धर्म के प्रचारक के रूप में "पंडित लेखराम-आर्य-पथिक" के नाम से कर्म-क्षेत्र में अवतरित हुए...।
पेशावर में पंडित जी को मिर्जा गुलाम अहमद का लिखा 'बुराहीन अहमदिया' पढ़ने को मिली, जिसमें मिर्जा ने अपने आप को खुदाई पैगम्बर होने का दावा किया था।
अहमदिया
"सर्व साधारण को सूचित किया जाता है कि जो कोई हिन्दू मेरे चमत्कारों को झूठ सिद्ध कर मुझे कायल कर देगा उसे मैं 2400/- रुपये बतौर हर्जाना दूंगा अगर वह हिन्दू चाहे तो एक वर्ष तक मेरे पास रह कर इसकी परीक्षा कर सकता है"
पं. लेखराम ने उसी समय मिर्जा को पत्र लिखा—
मैं एक साल तक आपके पास रहकर आपके चमत्कारों की परीक्षा लेने को तैयार हूँ। पर शर्त ये है कि यदि आप मेरे प्रश्नों का उत्तर न दे सके तो आपको पैगम्बर... ...होने का दावा छोड़कर... ...वैदिक धर्म स्वीकारना होगा।
लेखराम जी ने इस पत्र के अलावा कई और पत्र लिखे पर मिर्जा उसे टालते ही रहे।
जब पंडित जी के धैर्य ने जवाब दे दिया तो वे कादियान जा पहुंचे और मिर्जा को शास्त्रार्थ के लिए ललकारा—
मैंने आपको अनेक पत्र लिखे, परन्तु मिर्जा साहिब! आपने एक का भी उत्तर नहीं दिया... मजबूरन मुझे स्वयं यहाँ आना पड़ा।...
...यदि आप अपने को खुदाई पैगम्बर समझते हैं तो हो जाय शास्त्रार्थ, मैं आपकी बात को असत्य सिद्ध कर दूंगा।
मिर्जा जी से जवाब देते न बना।

मिर्जा लेखराम की निर्भयता और तर्क शक्ति की ख्याति पहले ही सुन चुके थे... इसलिए पंडित जी से शास्त्रार्थ करने का हौंसला ही न हुआ। बाद में...
ओ३म्
आर्य समाज
(कादियान)
...लेखराम कई दिनों तक कादियान में रहते हुए वैदिक धर्म का प्रचार करते रहे। और कादियान में उन्होंने आर्य समाज की स्थापना की।
सन् 1887 में पंडित जी ने 'आर्य गजट' नामक एक पत्र निकाला और स्वयं उसके सम्पादक बने। उसी समय पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा की मीटिंग हुई, जिसमें महात्मा हंसराज भी उपस्थित हुए।
सर्व सम्मति से निर्णय लिया गया है कि सभा की ओर से महर्षि दयानन्द का...
...जीवन-चरित्र लिखा जाये। अब आप लोग बताइये कि इस महान् कार्य की जिम्मेदारी किसके कंधों पर डाली जाये?
पं० लेखराम से बढ़ कर और कौन इस योग्य होगा? हमें उन्हीं से प्रार्थना करनी चाहिए।
सभापति ने पंडित जी से पूछा-
पंडित जी! आपको सदस्यों का निर्णय स्वीकार है?
संस्था के लिए मेरा पूरा जीवन समर्पित है। मैं इस महान् कार्य को अवश्य पूरा करूँगा।
पंडित जी ने कई वर्ष तक महर्षि दयानन्द से सम्बद्ध अनेक स्थानों का दौरा किया और प्रचुर सामग्री एकत्रित करते रहे।
वैदिक धर्म प्रचारार्थ निरंतर यात्रा करते रहने के कारण इनके नाम के साथ 'आर्य पथिक' का विशेषण भी जुड़ गया।

पंडित जी को हमेशा पवित्र वैदिक धर्म प्रचार की धुन लगी रहती थी। एक दिन पं० लेखराम प्रचार कार्य से लौटे। माँ ने बड़े प्यार से भोजन परोसा। वे भोजन कर रहे थे कि डाकिया ने एक लिफाफा उन्हें दिया। पत्र पढ़कर पंडित जी भोजन छोड़कर हाथ धोकर खड़े हो गये।
बेटा! क्या बात है? भोजन तो आराम से कर ले।
माँ! पत्र में लिखा है कि कुछ हिन्दू मुसलमान होने वाले हैं। आज ही वहाँ जाकर उन्हें बचाना होगा।
बेटा! तू कभी घर का भी ध्यान रखा कर। तेरा पुत्र बीमार है, अभी तूने ठीक से उसे देखा भी नहीं।
मां! मैं अपने एक पुत्र के लिए रुक गया तो राष्ट्र के सैंकडो पुत्र धर्म-भ्रष्ट हो जायेंगे।
और वे देश धर्म की पुकार के सामने माँ की पुकार अनसुनी करके पुत्र को देखे बिना ही चल दिये।
धन्य हैं वैदिक धर्म और धन्य हैं पंडित लेख-राम जी।
वैदिक धर्म के प्रचार व रक्षा में पंडित जी अपने प्राण तक अर्पित करने के लिये तैयार रहते थे। एक बार लाहौर में उन्हें सूचना मिली थी कि कुछ हिन्दुओं का धर्मान्तरण किया जा रहा है। वे धर्म रक्षा के लिए तुरन्त 'दोराहा' का टिकट लेकर रेल में बैठ गये। 'दो-राहा' एक छोटा स्टेशन है। अन्य यात्रियों से उन्हें पता चला कि वह मेल गाड़ी वहाँ नहीं रुकती। पर पं० जी रुके नहीं, स्टेशन पास आने पर उन्होंने अपना बिस्तर शरीर पर लपेटा और चलती गाड़ी से छलांग लगा दी। घायल अवस्था में वे प्रचार क्षेत्र में पहुँचे। लोगों ने जब लेखराम जी को खून से लथ-पथ देखा तो दंग रह गये और कारण पूछा। पंडित जी ने संक्षेप से ऊपर की घटना सुना दी। लोगों पर इस घटना का बहुत प्रभाव पड़ा। उन्होंने सोचा... हमारे लिए इन्होंने जान की बाजी लगा दी, और वहाँ एक भी व्यक्ति धर्मान्तरित नहीं हुआ।

पंडित जी का सारा जीवन वैदिक धर्म के लिए समर्पित था। जब उन्होंने 'शुद्धि आन्दोलन' चलाया तो मुल्ला-मौलवी पंडित लेखराम जी से बुरी तरह चिढ़ गये।
मौलवी जी! यह पंडित तो अब इस्लाम के लिए खतरा बनता जा रहा है।
यह हमारे धर्म परिवर्तन के प्रयासों पर पानी फेर रहा है। बड़ी मुश्किल से हमने कुछ लोग इस्लाम धर्म में दीक्षित किये थे, इस पंडित के कारण वे फिर हिन्दू बन गये।
उन लोगों ने मिलकर एक षड्यंत्र रचा।
मेरी समझ में एक तरकीब आई है।
कौन सी तरकीब मुझे भी तो... बताओ...?
फिर दोनों में कुछ काना-फूँसी हुई...।
फरवरी 1897 को काले और गठीले कद के एक व्यक्ति ने जो देखने में भयानक लगता था। उसने पंडित जी के घर में प्रवेश किया।
क्या चाहते हो भाई...?
मैं एक हिन्दू था। आपके 'शुद्धी करण-आन्दोलन' से प्रभावित हो कर आपके पास शुद्ध होने आया हूँ।

उस व्यक्ति ने पंडित जी को अपनी झूठी काल्पनिक कहानी सुनाई।
मैं बंगाल का रहने वाला हूँ। दो वर्ष पहले मुझे जबरन मुसलमान बना दिया गया था। तभी से मेरी आत्मा छटपटा रही है। मैं फिर से हिन्दू धर्म में आना चाहता हूँ।
सुबह का भूला शाम को घर लौटे तो उसे भूला नहीं कहते। तुम्हारा स्वागत है... पर कुछ समय लगेगा, इस दौरान तुम्हें मेरे पास ही रहना होगा।
मुझे आपकी हर बात मंजूर है।

जब यह बात पंडित लेखराम जी के साथियों को पता चली तो-
पंडित जी! जिस व्यक्ति को आपने शुद्ध करने के विचार से अपने घर में ठहराया है। उसका चरित्र मुझे कुछ ठीक नहीं लगता।
हाँ, मुझे भी कुछ ऐसा लग रहा है जैसे आपके विरुद्ध कोई षड्यंत्र रचा जा रहा है। आप सावधान रहें।
साथियो! आप चिंता न करें, मुझे कुछ नहीं होगा। यदि होता भी है तो मैंने अपना सारा जीवन वैदिक धर्म के लिए समर्पित कर रखा है।
उसी दिन से वह व्यक्ति पंडित जी के साथ रहने लगा।

6 मार्च को जब पंडित जी प्रतिनिधि सभा के कार्यालय पहुँचे तो देखा कि वह व्यक्ति कंबल ओढ़े कांप रहा है।
क्या बात है मित्र ! तुम कांप क्यों रहे हो ?
पंडित जी! मेरी तबीयत अच्छी नहीं है। मुझे ज्वर के साथ सिर दर्द भी है।
तो चलो, मैं तुम्हें डाक्टर से दवाई दिलवाये देता हूँ।
पंडित जी स्वयं उसे डॉक्टर के पास ले गये, और दवाई दिलवा कर घर ले आये।
6 मार्च 1897 के दिन घर पर जब पं० लेखराम जी महर्षि दयानन्द जी के जीवन चरित्र का लेखन कर रहे थे। उसी समय माँ ने कहा—
पुत्र लेखराम ! छः बज गये हैं। भोजन का समय होने जा रहा है, पर घर में तेल नहीं है। जरा बाजार से तेल तो ले आओ।
ओह ! आपने पहले भी कहा था, पर...
...महर्षि के चरित्र को लिखने में मैं इतना मग्न हो गया था कि आपकी बात भूल गया, अभी लाया माताजी..!
ओ३म् महर्षि दयानन्द चरित्र
पंडित जी जैसे ही बाहर जाने के लिए खड़े हो-कर हाथ ऊपर करके अंग-ड़ाई लेने लगे तभी—
खचाक
उस काले व्यक्ति ने पंडित जी के पेट में छुरा घोंप दिया। उनका पेट फट गया...
...और आंतड़ियाँ बाहर लटक आई। खून की धारा बहने लगी, लेकिन उन्होंने हिम्मत करके हत्यारे का हाथ पकड़ लिया। शोर सुन-कर पंडित जी की माताजी और पत्नी रसोई घर से बाहर निकल आई।
हत्यारे ! जिसने तुझे शरण दी उसी पर तूने प्राण घातक हमला किया ?
क्या हो रहा है यहाँ ?

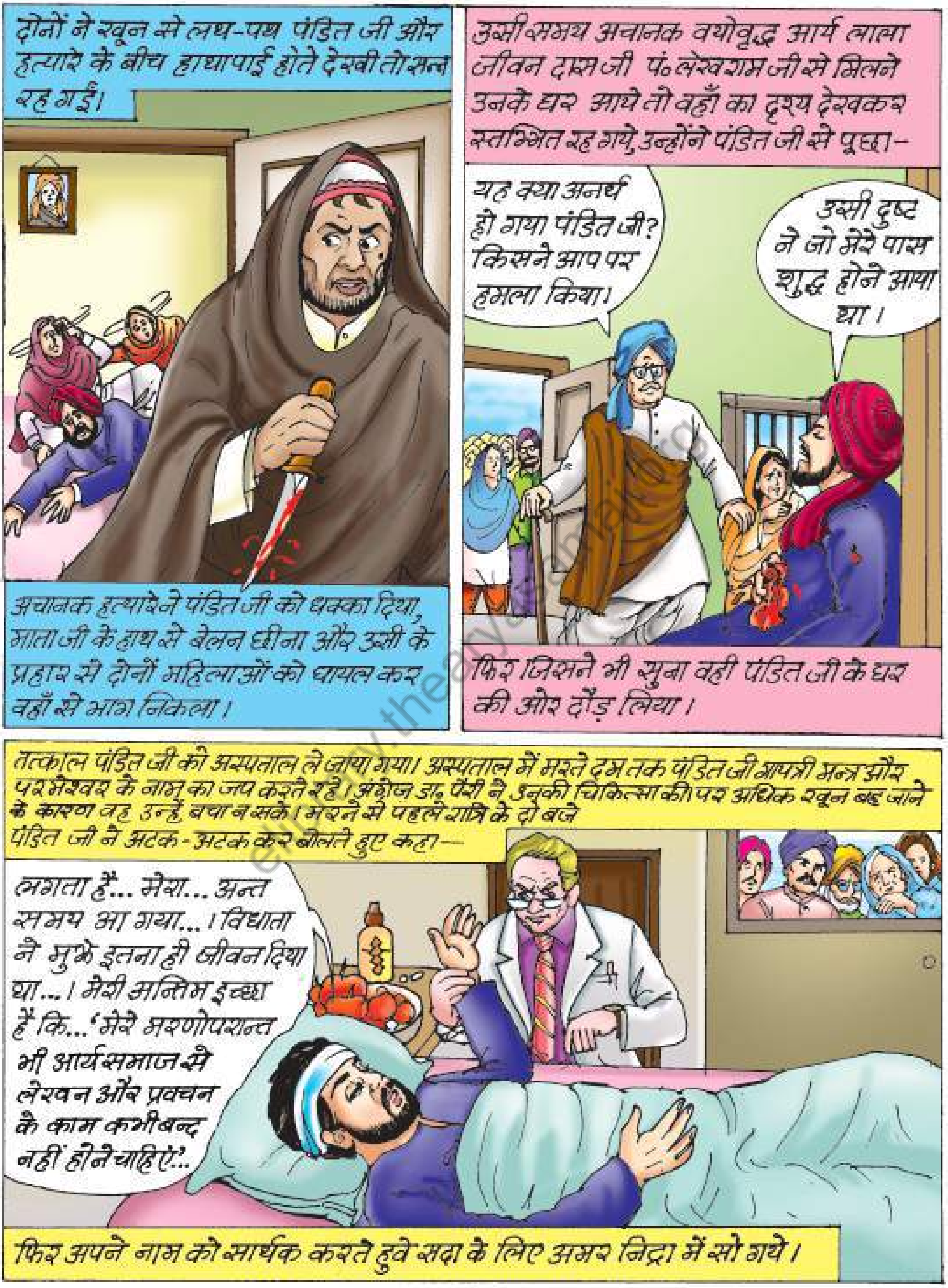

दोनों ने खून से लथ-पथ पंडित जी और हत्यारे के बीच हाथापाई होते देखी तो सन्न रह गईं।
अचानक हत्यारे ने पंडित जी को धक्का दिया, माता जी के हाथ से बेलन छीना और उसी के प्रहार से दोनों महिलाओं को घायल कर वहाँ से भाग निकला।
उसी समय अचानक वयोवृद्ध आर्य लाला जीवन दास जी पं० लेखराम जी से मिलने उनके घर आये तो वहाँ का दृश्य देखकर स्तम्भित रह गये, उन्होंने पंडित जी से पूछा–
यह क्या अनर्थ हो गया पंडित जी? किसने आप पर हमला किया।
उसी दुष्ट ने जो मेरे पास शुद्ध होने आया था।
फिर जिसने भी सुना वही पंडित जी के घर की ओर दौड़ लिया।
तत्काल पंडित जी को अस्पताल ले जाया गया। अस्पताल में मरते दम तक पंडित जी गायत्री मन्त्र और परमेश्वर के नाम का जप करते रहे। अंग्रेज डा० पैरी ने उनकी चिकित्सा की पर अधिक खून बह जाने के कारण वह उन्हें बचा न सके। मरने से पहले रात्रि के दो बजे पंडित जी ने अटक-अटक कर बोलते हुए कहा—
लगता है... मेरा... अन्त समय आ गया...। विधाता ने मुझे इतना ही जीवन दिया था...। मेरी अन्तिम इच्छा है कि...'मेरे मरणोपरान्त भी आर्यसमाज से लेखन और प्रवचन के काम कभी बन्द नहीं होने चाहिएं'...
फिर अपने नाम को सार्थक करते हुवे सदा के लिए अमर निद्रा में सो गये।

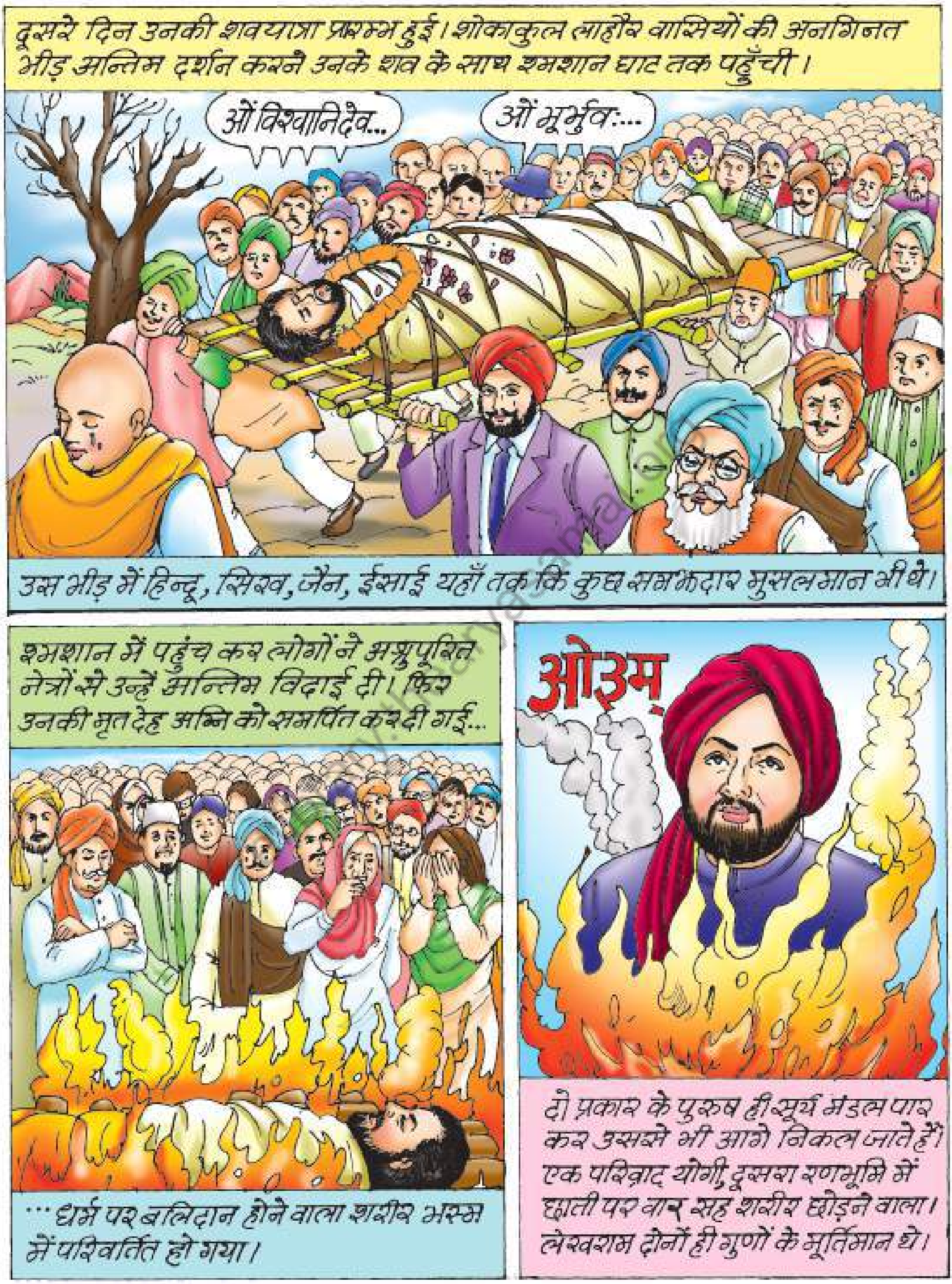
दूसरे दिन उनकी शवयात्रा प्रारम्भ हुई। शोकाकुल लाहौर वासियों की अनगिनत भीड़ अन्तिम दर्शन करने उनके शव के साथ श्मशान घाट तक पहुँची।
ओं विश्वानिदेव...
ओं भूर्भुवः....
उस भीड़ में हिन्दू, सिख, जैन, ईसाई यहाँ तक कि कुछ समझदार मुसलमान भी थे।
श्मशान में पहुंच कर लोगों ने अश्रुपूरित नेत्रों से उन्हें अन्तिम विदाई दी। फिर उनकी मृत देह अग्नि को समर्पित कर दी गई...
...धर्म पर बलिदान होने वाला शरीर भस्म में परिवर्तित हो गया।
ओउम्
दो प्रकार के पुरुष ही सूर्य मंडल पार कर उससे भी आगे निकल जाते हैं। एक परिव्राट् योगी, दूसरा रणभूमि में छाती पर वार सह शरीर छोड़ने वाला। लेखराम दोनों ही गुणों के मूर्तिमान थे।

महर्षि दयानन्द और उनके अनुयायी

स्वामी श्रद्धानन्द

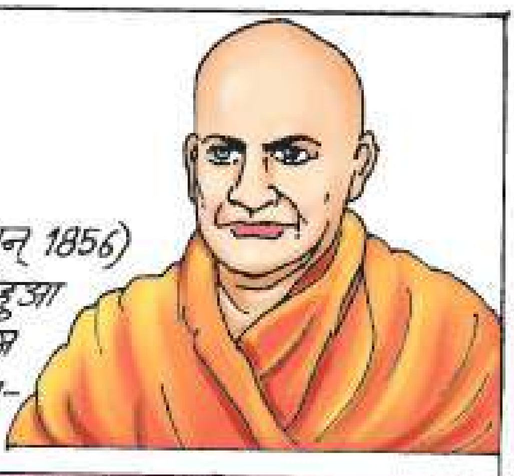

स्वामी श्रद्धानन्द का जन्म फाल्गुन कृष्ण त्रयोदशी, संवत् 1913 (सन् 1856) को पंजाब के जालन्धर जिले के अन्तर्गत 'तलवन' नामक गाँव में हुआ था। उनके पिता का नाम नानक चन्द था। स्वामी श्रद्धानन्द का जन्म का नाम बृहस्पति था, पर यह नाम कभी व्यवहार में नहीं आया। बाल्यावस्था से ही स्वामी जी का व्यावहारिक नाम 'मुंशीराम' रहा।

प्रचलित पूजा पद्धति से घृणा होने पर उनका झुकाव ईसाइयत की ओर हुआ। बात यहाँ तक बढ़ी, कि वे बपतिस्मा लेने और ईसाई बनने के लिए फादर लीफ के पास चर्च में गए।
आज मैं एक पवित्र धर्म ग्रहण करने जा रहा हूँ।
मुंशीराम ने चर्च में एक पादरी और नन 'स्त्री' को अश्लील अवस्था में देखा तो घृणा से उल्टे पाँव लौट आए।
छिः यह कैसा पवित्र धर्म? यहाँ तो और भी अधिक गन्दगी भरी पड़ी है।
और इस प्रकार मुंशीराम का मत-पन्थों से विश्वास उठ गया और वे पक्के नास्तिक बन गए।
गलत संगति और अंग्रेजी उपन्यासों के दुष्प्रभाव से मुंशीराम मद्यपान व मांसाहार आदि दुर्व्यसनों में फँस गए। आवारा मित्रों...
वाह!
वाह!
...के साथ मुजरों में जाने लगे। इस प्रकार मुंशीराम का नैतिक पतन होने लगा। मुंशीराम की इस नास्तिकता और नैतिक-पतन से उनके पिता नानकचन्द अत्यन्त चिन्तित थे।

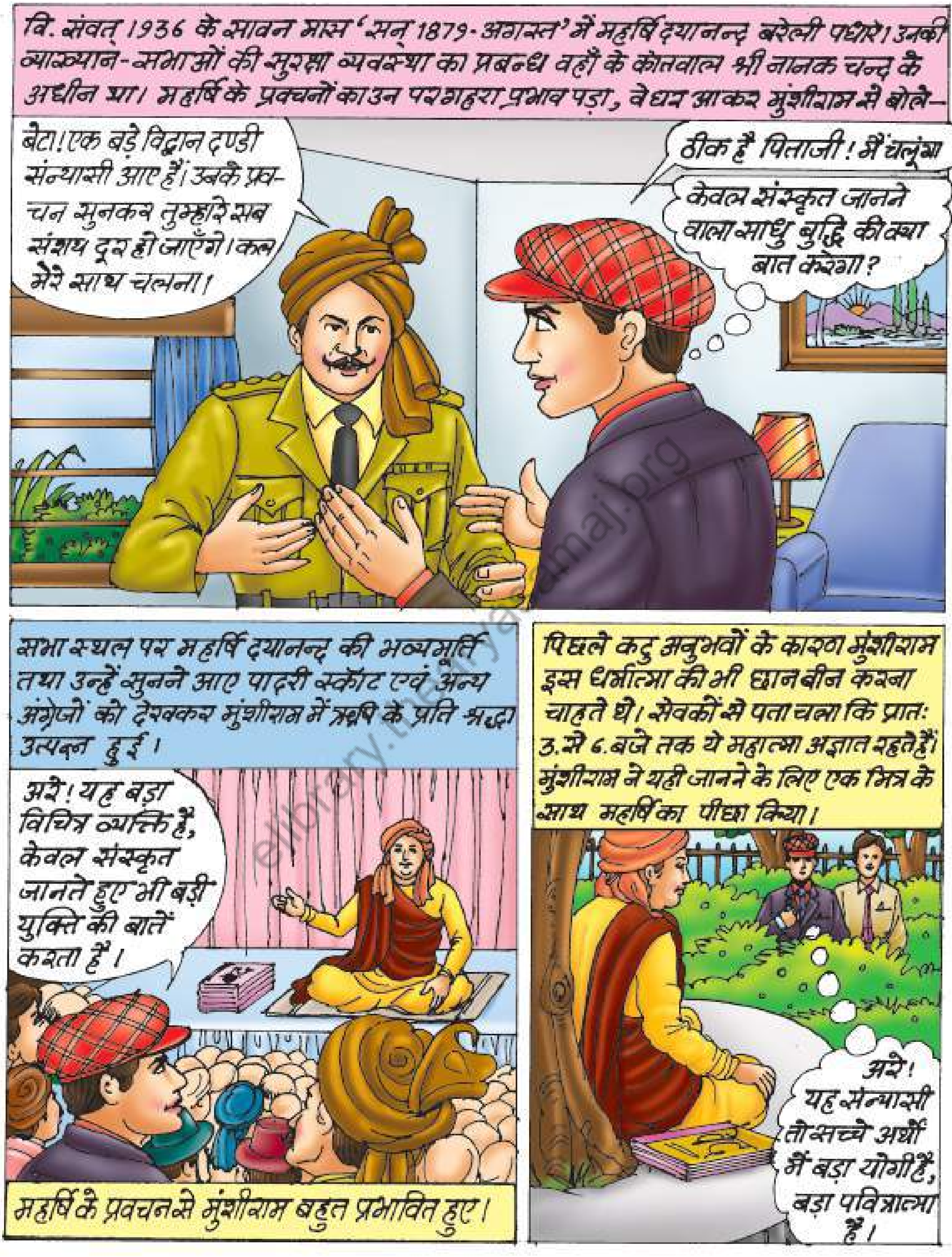
वि. संवत् 1936 के सावन मास 'सन् 1879-अगस्त' में महर्षि दयानन्द बरेली पधारे। उनकी व्याख्यान-सभाओं की सुरक्षा व्यवस्था का प्रबन्ध वहाँ के कोतवाल श्री नानक चन्द के अधीन था। महर्षि के प्रवचनों का उन पर गहरा प्रभाव पड़ा, वे घर आकर मुंशीराम से बोले-
बेटा! एक बड़े विद्वान दण्डी संन्यासी आए हैं। उनके प्रवचन सुनकर तुम्हारे सब संशय दूर हो जाएँगे। कल मेरे साथ चलना।
ठीक है पिताजी! मैं चलूंगा
केवल संस्कृत जानने वाला साधु बुद्धि की क्या बात करेगा?
सभा स्थल पर महर्षि दयानन्द की भव्यमूर्ति तथा उन्हें सुनने आए पादरी स्कॉट एवं अन्य अंग्रेजों को देखकर मुंशीराम में ऋषि के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई।
अरे! यह बड़ा विचित्र व्यक्ति है, केवल संस्कृत जानते हुए भी बड़ी युक्ति की बातें करता है।
महर्षि के प्रवचन से मुंशीराम बहुत प्रभावित हुए।
पिछले कटु अनुभवों के कारण मुंशीराम इस धर्मात्मा की भी छानबीन करना चाहते थे। सेवकों से पता चला कि प्रातः 3. से 6. बजे तक ये महात्मा अज्ञात रहते हैं। मुंशीराम ने यही जानने के लिए एक मित्र के साथ महर्षि का पीछा किया।
अरे! यह संन्यासी तो सच्चे अर्थों में बड़ा योगी है, बड़ा पवित्रात्मा है।

नास्तिक मुंशीराम ने महर्षि से तीन दिनों तक ईश्वर संबन्धी प्रश्नोत्तर किये और महर्षि के तर्कों के सामने चुप हो गये।
आपने मेरी जुबान तो बन्द कर दी, लेकिन परमात्मा पर भरोसा तो अभी नहीं हुआ।
मैंने कब कहा कि तुम्हें भगवान पर भरोसा करा दूँगा, भगवान पर भरोसा तो भगवान की कृपा से ही होगा।
इस प्रकार महर्षि के सत्संग के प्रभाव से मुंशीराम के जिज्ञासु जीवन में पवित्रता, धार्मिकता का बीज पड़ गया और उनके विचार बदलने लगे।

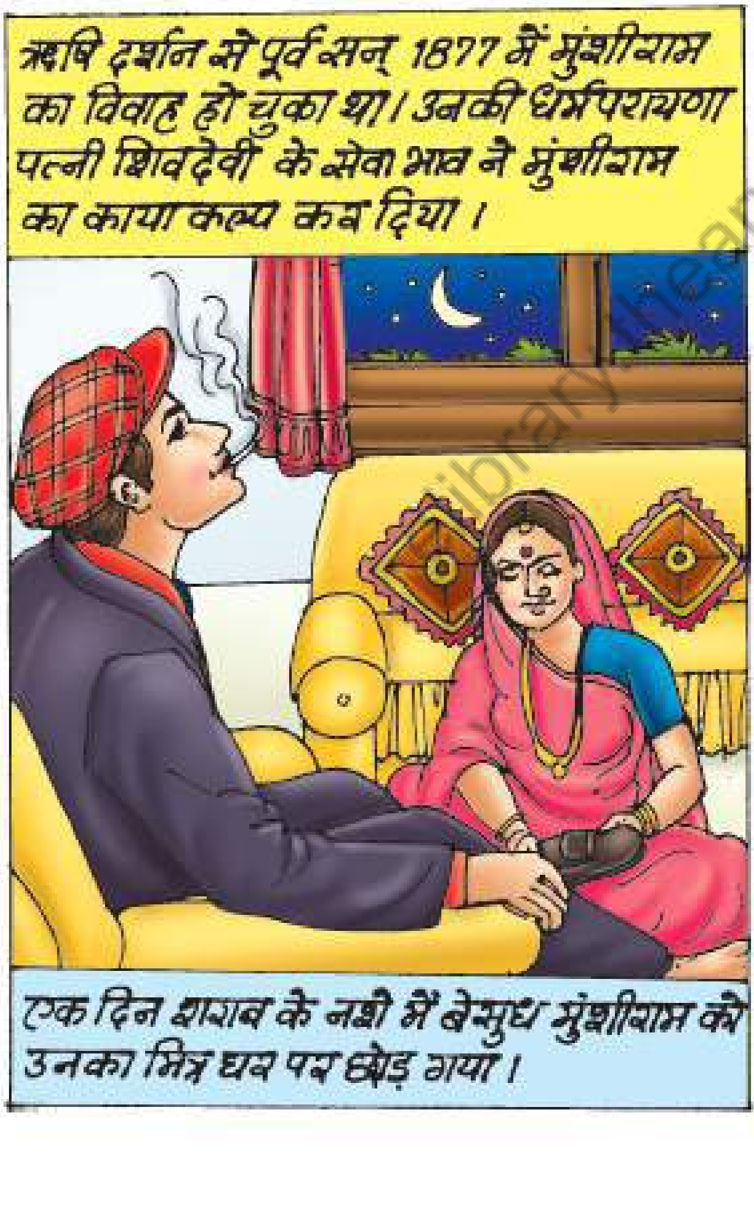
ऋषि दर्शन से पूर्व सन् 1877 में मुंशीराम का विवाह हो चुका था। उनकी धर्मपरायणा पत्नी शिवदेवी के सेवा भाव ने मुंशीराम का कायाकल्प कर दिया।
एक दिन शराब के नशे में बेसुध मुंशीराम को उनका मित्र घर पर छोड़ गया।

रात्रि के एक बजे जब मुंशीराम को होश आया, तब...
देवी ! तुम लगातार जागती रही, भोजन तक नहीं किया, अब भोजन कर लो।
जब आपने भोजन नहीं किया तो मैं कैसे खा सकती हूँ ? अब भोजन में कोई रुचि नहीं है।
इस घटना ने उनको अन्दर तक हिला दिया। अगले दिन उनके जीवन में एक नया प्रभात आ चुका था।

मुंशीराम ने अंग्रेजों के अन्याय - अत्याचार के कारण तहसीलदार का पद त्याग दिया। धार्मिक दृष्टि से वे प्रथम ब्रह्म समाज की ओर झुके, मगर सन्तुष्ट न हुए। सत्यार्थ-प्रकाश पढ़ा तो सब संशय दूर हुए और वे सन् 1884 में आर्यसमाज बच्छोवाली, लाहौर के सदस्य बन गए।
1892 में उन्हें आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब का प्रधान चुन लिया गया। डी.ए.वी शिक्षण संस्थान को भटकते देखकर उन्होंने 1898 में गुरुकुल की स्थापना का संकल्प लिया और उसके लिए धन संग्रह हेतु घर छोड़ दिया।

गुरुकुल के लिए 'अप्रैल 1900' तक वे 40,000 रु. दान लेकर लौटे तो आर्यों ने उन का सार्वजनिक अभिनन्दन किया।
महात्मा मुंशीराम की
जय हो।

जिला बिजनौर उत्तर प्रदेश के ऋषि भक्त मुंशी अमन सिंह ने हिमालय स्थित कांगड़ी ग्राम और गंगा तटवर्ती अपनी विशाल भूमि गुरुकुल हेतु दान करते हुए कहा
मेरी जायदाद इस शुभ कार्य के लिए सादर समर्पित है। आप महर्षि की इच्छा पूर्ण कर सकते हैं।

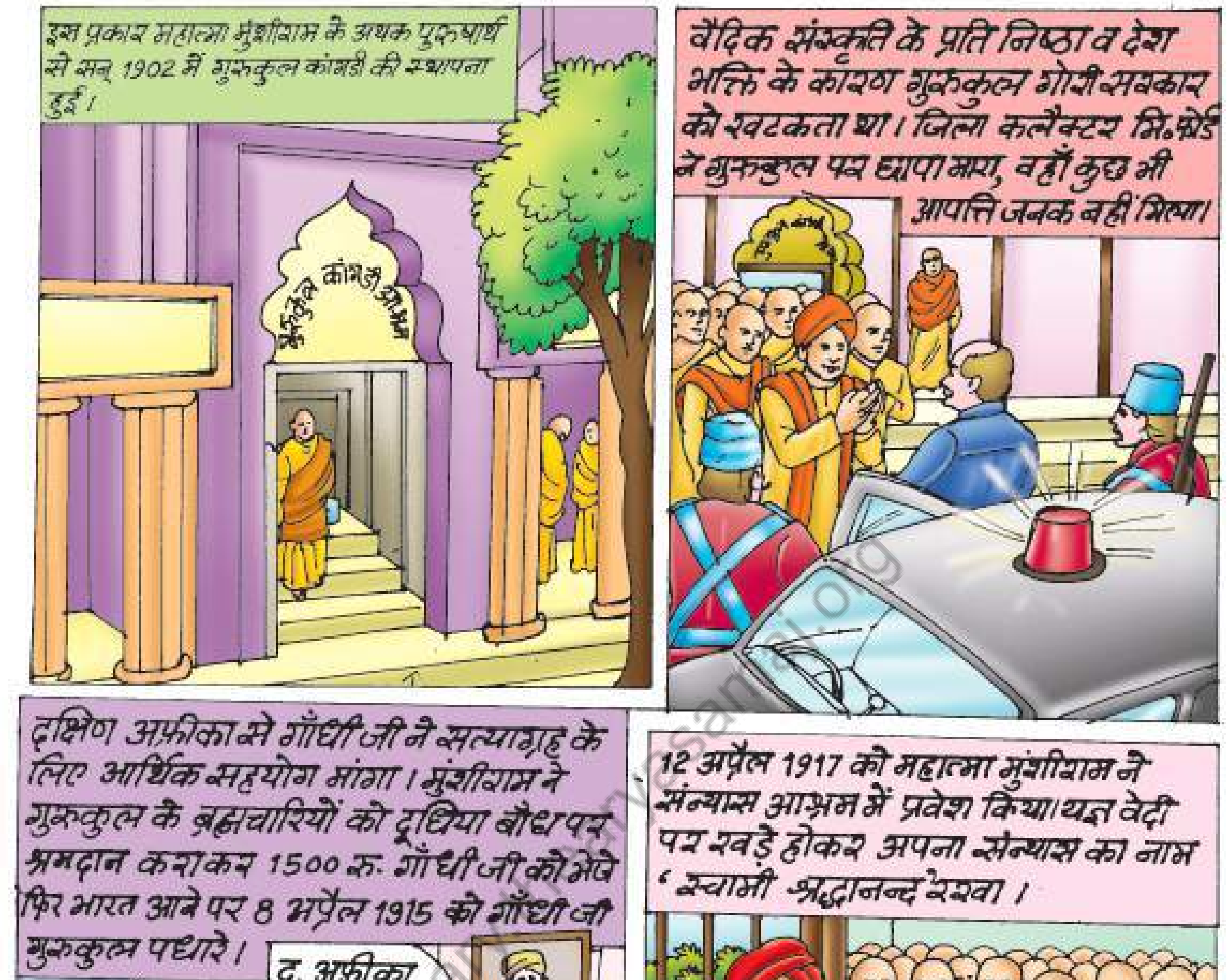
इस प्रकार महात्मा मुंशीराम के अथक पुरुषार्थ से सन् 1902 में गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना हुई।
गुरुकुल कांगड़ी आश्रम
वैदिक संस्कृति के प्रति निष्ठा व देश भक्ति के कारण गुरुकुल गोरी सरकार को खटकता था। जिला कलैक्टर मि. फ्रेंड ने गुरुकुल पर छापा मारा, वहाँ कुछ भी आपत्ति जनक नहीं मिला।
दक्षिण अफ्रीका से गाँधी जी ने सत्याग्रह के लिए आर्थिक सहयोग मांगा। मुंशीराम ने गुरुकुल के ब्रह्मचारियों को दूधिया बाँध पर श्रमदान कराकर 1500 रु. गाँधी जी को भेजे फिर भारत आने पर 8 अप्रैल 1915 को गाँधी जी गुरुकुल पधारे।
द. अफ्रीका में आन्दोलन के लिए आपने जो सहयोग दिया उसका धन्यवाद।
मैं आपको महात्मा गाँधी कहना चाहूँगा। वह सहयोग तो हमारा कर्तव्य था।
गाँधी जी को महात्मा की उपाधि मुंशीराम से प्राप्त हुई।
12 अप्रैल 1917 को महात्मा मुंशीराम ने संन्यास आश्रम में प्रवेश किया। यज्ञ वेदी पर खड़े होकर अपना संन्यास का नाम 'स्वामी श्रद्धानन्द' रखा।
मैं सब काम श्रद्धापूर्वक ही करता रहा हूँ। अतः मैं श्रद्धानंद नाम के साथ ही संन्यास में प्रवेश करता हूँ।

गुरुकुल के वे कुलपिता थे। एक रात, एक रोगी छात्र को देखने गए, रोगी अकेला था। सेवा में नियुक्त ब्रह्मचारी कहीं गया था। तभी छात्र ने उल्टी कर दी, महात्मा मुंशीराम जी ने रोगी की उल्टी अपने दोनों हाथों में ले ली। तभी ब्रह्मचारी पात्र लेकर लौटा–
रोगी छात्र को अकेला छोड़ कर कहां गये थे?
ये उल्टी करना चाहता था, इसलिए मैं बर्तन लेने गया था।
तब तक रोगी तुम्हारी प्रतीक्षा करता क्या? तुमसे सेवा नहीं होगी, जाओ और जाकर सो जाओ।
महात्मा जी सारी रात रोगी के पास रहे, और रोगी की सेवा करते रहे।
एक बार महात्मा जी ब्रह्मचारियों के साथ गंगा किनारे टहल रहे थे, तभी उन्हें एक शेर मिल गया, मुंशीराम ने तुरन्त पत्थर कपड़े में बाँधकर...
...घुमाते हुए हुंकार के साथ शेर की तरफ बढ़े। मुंशीराम का रौद्ररूप देखकर शेर गंगा की ओर लौट गया। महात्माजी की निडरता से ब्रह्मचारी प्रभावित हुए।

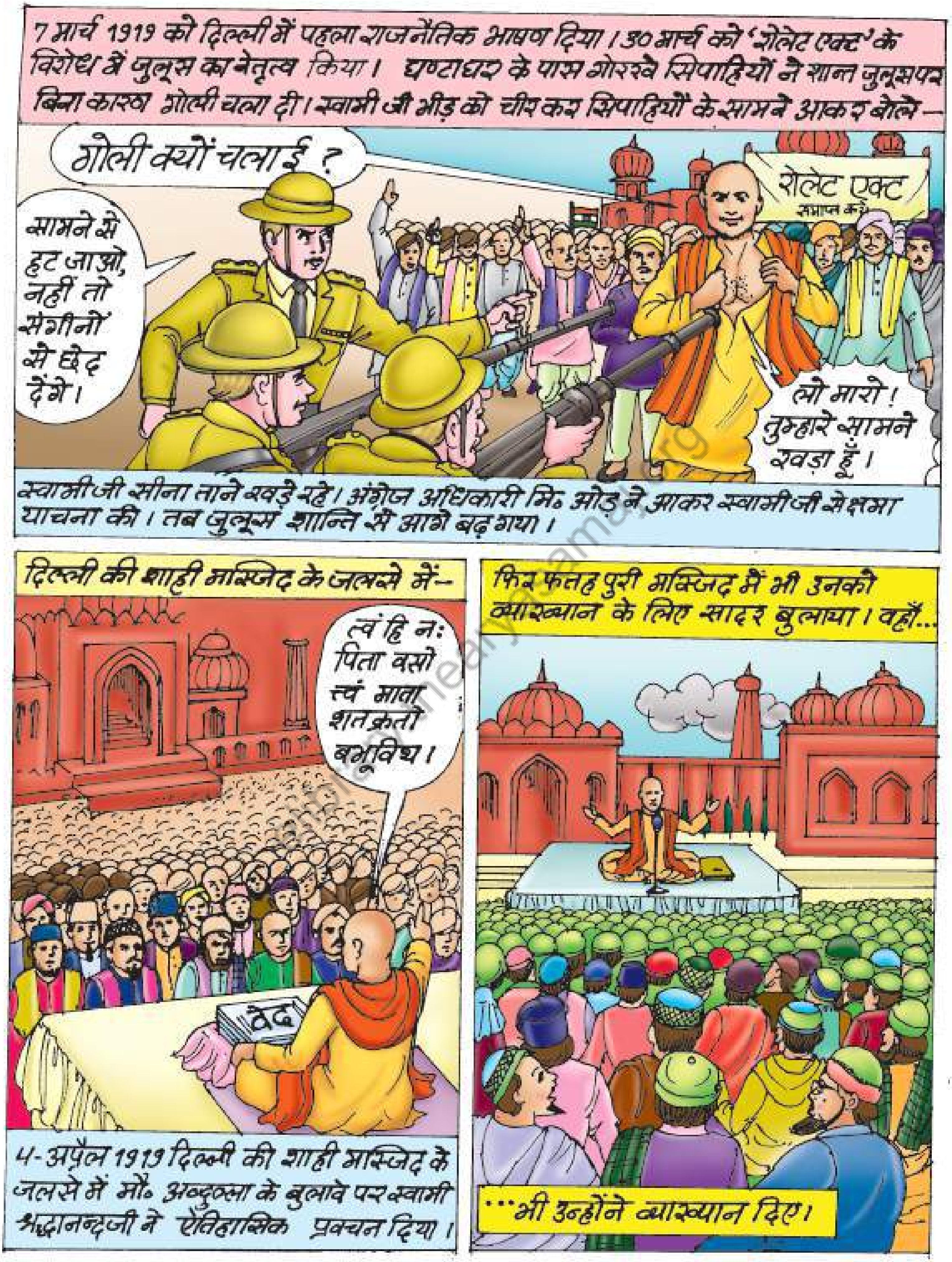
7 मार्च 1919 को दिल्ली में पहला राजनैतिक भाषण दिया। 30 मार्च को 'रोलेट एक्ट' के विरोध में जुलूस का नेतृत्व किया। घण्टाघर के पास गोरखे सिपाहियों ने शान्त जुलूस पर बिना कारण गोली चला दी। स्वामी जी भीड़ को चीर कर सिपाहियों के सामने आकर बोले—
गोली क्यों चलाई ?
सामने से हट जाओ, नहीं तो संगीनों से छेद देंगे।
रोलेट एक्ट
लो मारो ! तुम्हारे सामने खड़ा हूँ।
स्वामी जी सीना ताने खड़े रहे। अंग्रेज अधिकारी मि० ओड़ ने आकर स्वामी जी से क्षमा याचना की। तब जुलूस शान्ति से आगे बढ़ गया।
दिल्ली की शाही मस्जिद के जलसे में—
त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ।
वेद
4-अप्रैल 1919 दिल्ली की शाही मस्जिद के जलसे में मौ० अब्दुल्ला के बुलावे पर स्वामी श्रद्धानन्दजी ने ऐतिहासिक प्रवचन दिया।
फिर फतहपुरी मस्जिद में भी उनको व्याख्यान के लिए सादर बुलाया। वहाँ...
...भी उन्होंने व्याख्यान दिए।

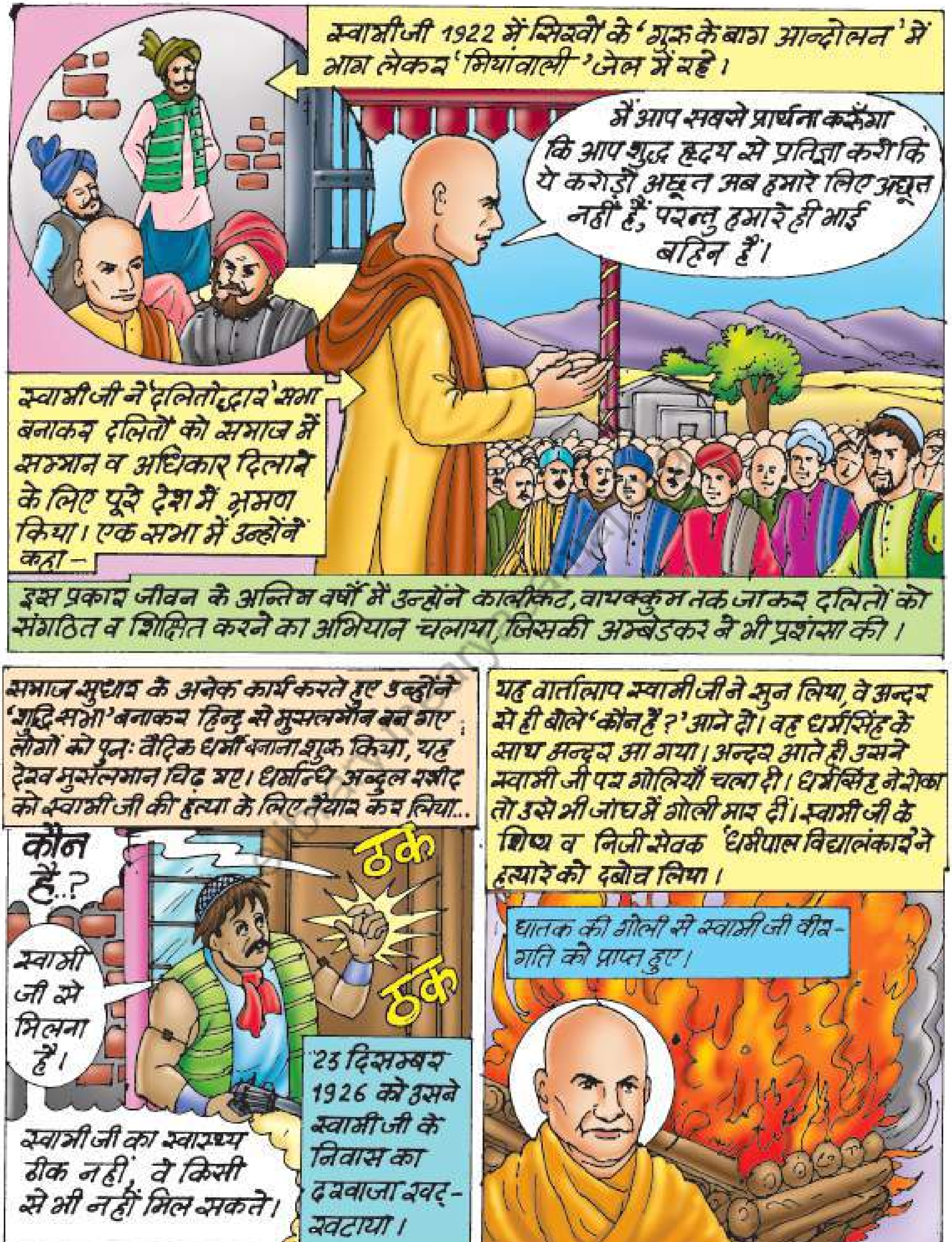

स्वामी जी 1922 में सिखों के 'गुरु के बाग आन्दोलन' में भाग लेकर 'मियांवाली' जेल में रहे।
मैं आप सबसे प्रार्थना करूँगा कि आप शुद्ध हृदय से प्रतिज्ञा करें कि ये करोड़ों अछूत अब हमारे लिए अछूत नहीं हैं, परन्तु हमारे ही भाई बहिन हैं।
स्वामी जी ने 'दलितोद्धार' सभा बनाकर दलितों को समाज में सम्मान व अधिकार दिलाने के लिए पूरे देश में भ्रमण किया। एक सभा में उन्होंने कहा –
इस प्रकार जीवन के अन्तिम वर्षों में उन्होंने कालीकट, वायक्कुम तक जाकर दलितों को संगठित व शिक्षित करने का अभियान चलाया, जिसकी अम्बेडकर ने भी प्रशंसा की।
समाज सुधार के अनेक कार्य करते हुए उन्होंने 'शुद्धि सभा' बनाकर हिन्दू से मुसलमान बन गए लोगों को पुनः वैदिक धर्मी बनाना शुरू किया, यह देख मुसलमान चिढ़ गए। धर्मान्ध अब्दुल रशीद को स्वामी जी की हत्या के लिए तैयार कर लिया...
कौन है..?
ठक
ठक
स्वामी जी से मिलना है।
"23 दिसम्बर 1926 को उसने स्वामी जी के निवास का दरवाजा खट-खटाया।
स्वामी जी का स्वास्थ्य ठीक नहीं, वे किसी से भी नहीं मिल सकते।
यह वार्तालाप स्वामी जी ने सुन लिया, वे अन्दर से ही बोले 'कौन है?' आने दो। वह धर्मसिंह के साथ अन्दर आ गया। अन्दर आते ही उसने स्वामी जी पर गोलियाँ चला दी। धर्मसिंह ने रोका तो उसे भी जांघ में गोली मार दी। स्वामी जी के शिष्य व निजी सेवक 'धर्मपाल विद्यालंकार' ने हत्यारे को दबोच लिया।
घातक की गोली से स्वामी जी वीर-गति को प्राप्त हुए।

महर्षि दयानन्द और उनके अनुयायी
महात्मा हंसराज
महात्मा हंसराज जी का जन्म 19 अप्रैल 1864 को पंजाब के होशियारपुर जिले के अन्तर्गत बजवाड़ा नामक गाँव में हुआ था। हंसराज जी के पिता जी का नाम लाला चुन्नी लाल था तथा माता जी का नाम गणेश देवी था।
महात्मा हंसराज के पिता लाला चुन्नी लाल की आर्थिक स्थिति इतनी अच्छी नहीं थी। इसी कारण हंसराज का लालन पालन भी निर्धन अवस्था में ही हुआ था। हंसराज जब पढ़ने योग्य हुए तो उनके पिता ने उन्हें गाँव से दूर प्राइमरी स्कूल में दाखिल करा दिया।
क-कमल
देखो! बेटा हंसराज, गुरु पिता समान होता है। अपने गुरु का आदर करना और मन लगाकर पढ़ना।
जी पिताजी...!
हंसराज को नंगे पैर ही स्कूल जाना पड़ता था। रास्ते में एक चौड़ा रेतीला मैदान पड़ता था। दोपहर की जलती धूप में स्कूल से घर लौटते समय उस तपती रेत में हंसराज के कोमल पैर जल जाते थे। जब असहनीय जलन होती थी तब पैर के नीचे लकड़ी की तख्ती रख लेते थे...
प्रा. स्कू
...पर उन्होंने कभी भी अपने पिता जी से जूतों के लिए शिकायत व जिद नहीं की।

बचपन से ही हंसराज में प्रभु-भक्ति के भाव थे...
...वे बचपन से ही बड़े चाव से संध्या 'ईश्वर की उपासना' किया करते थे।
उस समय गाँव में बहुत कम पढ़े लिखे लोग होते थे। इस कारण गाँव वाले हंसराज के पास अपने पत्र लिखाने और पढ़वाने आया करते थे।
एक दिन हंसराज ने एक महिला का खत पढ़ दिया, तो माताजी ने कहा—
अरे हंसराज! तू दूसरों के ही खत पढ़ा करता है, अपनी पढ़ाई की ओर कब ध्यान देगा?
माताजी! जितना पढ़ा है, यदि वह दूसरों के काम नहीं आया, तो फिर पढ़ने का क्या लाभ?
बालक हंसराज बचपन से ही निर्भीक थे और असत्य को सहन नहीं करते थे। वे मिशन स्कूल में पढ़ते थे। मुख्याध्यापक आर. सी. दास ईसाई थे और वैदिक धर्म पर कटाक्ष करते थे।
एक दिन कक्षा में—
प्राचीन काल में आर्य देवी-देवताओं की पूजा करते थे और सूर्य के आगे माथा रगड़ते थे।
आप गलत कह रहे हैं गुरुजी! प्राचीन आर्य केवल एक ईश्वर की उपासना करते थे।
इस बात पर अध्यापक ने आग-बबूला होकर हंसराज की बेंतों से पिटाई की, पर हंसराज बिल्कुल न घबराये, वह सत्य के पुजारी थे।

हंसराज अभी बारह वर्ष के ही थे कि उनके पिता का स्वर्गवास हो गया। फिर उनके पिता की अंतिम इच्छानुसार छोटी उम्र में ही उनका विवाह हो गया। हंसराज के बड़े भाई 'मुल्कराज' लाहौर में नौकरी करते थे। वे हंसराज को लाहौर ले गये और वहां उन्हें 'मिशन हाई स्कूल' में दाखिल करा दिया।

उन दिनों लाहौर में आर्य समाज का खूब प्रचार हो रहा था। मेधावी हंसराज भी वैदिक धर्म और महर्षि के विचारों से प्रभावित होने लगे। हंसराज ने महर्षि के साहित्य सत्यार्थ प्रकाश, वेद भाष्य का गहरा स्वाध्याय करना प्रारंभ किया।

elibrary.theaaryasamaj.org

हंसराज पर स्वामीजी के विचारों का ऐसा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने दृढ़ निश्चय कर लिया...
मैं महर्षि दयानन्द के बताये मार्ग पर चलूँगा और एक आदर्श मानव बनूँगा।
कुछ समय बाद पं॰ गुरुदत्त, लाला लाजपत राय, राजा नरेन्द्र नाथ और द्वारिका दास जैसे आर्य समाजी नेताओं से सम्पर्क होने से हंसराज एक निष्ठावान् आर्य समाजी बन गये।
महर्षि दयानन्द का स्वर्गवास होने पर आर्यसमाजी लोगों ने उनकी याद में 'दयानन्द ऐंग्लो वैदिक-स्कूल' की स्थापना की। स्कूल तैयार होने पर...
इसे चलाने के लिए हमें एक ऐसा व्यक्ति चाहिए जो खूब पढ़ा लिखा हो, भारतीय पूर्व इतिहास का ज्ञाता हो और महर्षि के सिद्धान्तों के प्रति समर्पित हो।
दयानन्द ऐंग्लो वैदिक
दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कॉलेज
जब हंसराज ने यह बात सुनी, तो उन्होंने तुरन्त अपने नाम का प्रस्ताव रखा।
इस काम के लिए मैं अपने आप को समर्पित करता हूँ। और शपथ लेता हूँ कि...
...महर्षि के सिद्धान्तों पर पूर्णत: अमल करूँगा तथा निष्काम भाव से निःशुल्क संस्था को अपनी सेवायें प्रदान करूँगा।
जब हंसराज के बड़े भाई मुल्कराज ने यह दृढ़ निश्चय और निःशुल्क वाली बात जानी तो कुछ पलों के लिए विचार में पड़ गये।
मेरी मासिक आय केवल अस्सी रुपये है। इतने में दो परिवारों का गुजारा कैसे होगा?
फिर बाद में–
हंसराज! मैं तुम्हारे विचारों से सहमत हूँ। तुम निःसंकोच होकर संस्था की सेवा करो।

फिर हंसराज ने संस्था की इस प्रकार निष्काम भाव से निःशुल्क सेवा की, कि लोग उन्हें आदर पूर्वक महात्मा हंसराज कहने लगे।
हंसराज जी सच्ची लगन से महर्षि दयानन्द के उद्देश्यों का पालन करते हैं।
हाँ... जिस लगन से वे संस्था की सेवा कर रहे हैं, देखना एक दिन उनके प्रयास स्वरूप संस्था उच्च स्थान पर पहुँचेगी।
दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कॉलेज
महात्मा हंसराज 25 वर्षों तक संस्था की निःशुल्क सेवा करते रहे और उनके प्रयास...
...स्वरूप कॉलेज में नियमित रूप से शुद्ध वैदिक रीति से पठन-पाठन व होम आदि होते रहे।
अत्यधिक परिश्रम तथा आराम न मिलने के कारण उनका शरीर कमजोर हो गया और उन में तपेदिक के लक्षण नज़र आने लगे। अनेक प्रकार के इलाज कराये पर कोई लाभ न मिला। अन्त में वे हताश होकर बोल उठे–
लगता है कि विधाता ने मेरे जीवन की आयु इतनी ही लिखी है।
इतने हताश न हों महात्मा जी, आप आयुर्वेद चिकित्सा द्वारा इलाज करायें। ईश्वर ने चाहा तो बिल्कुल ठीक हो जाओगे।
उसी दिन से हंसराज जी ने आयुर्वेद चिकित्सा द्वारा इलाज कराना शुरू कर दिया। कुछ ही दिनों में वे स्वस्थ हो गये। फलतः उनकी आयुर्वेद चिकित्सा पर आस्था बढ़ गई। फिर इन्होंने विदेशी दवाओं का कभी प्रयोग नहीं किया।

उसी दौरान महात्मा जी के पुत्र बलराज को राजद्रोह के आरोप में गोरी सरकार ने गिरफ्तार कर लिया और मुकद्दमा दिल्ली में चला...
हंसराज जी की पत्नी का पुत्र के गम में देहान्त हो गया। छोटा पुत्र योधराज निमोनियाग्रस्त हो गया।
उन दिनों 'पीपुल्स बैंक' फेल होने से पंजाब को-आपरेटिव बैंक जिसके M. D. महात्मा जी के भाई थे को भारी राशि का भुगतान करना पड़ा। और महात्मा जी का आर्थिक संकट गहराया। परन्तु महात्मा जी थोड़े भी विचलित नहीं हुए। यह देख लोग अक्सर उनसे पूछते...
महात्मा जी! आप पर इतना घोर संकट आया, क्या-क्या कष्ट नहीं सहे आपने। फिर भी आपके चेहरे...
...पर चिन्ता के भाव नहीं हैं। ऐसा क्यों?
...और महात्मा जी सरल भाव से उत्तर देते—
मैं तो महर्षि दयानन्द के सिद्धान्तों का प्रतिपालन करता हूँ। याद है, उन्होंने कहा था...'सम्पत्ति और विपत्ति में महान् पुरुष एक समान व्यवहार करते हैं।

कुछ समय पश्चात् महात्मा जी कॉलेज के प्राचार्य पद से मुक्त हो गये । और उन्होंने 'आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा' का प्रधान पद संभाल लिया ।
आर्य प्रादेशिक प्रति निधि सभा
महात्मा हंसराज ने परोपकार के अनेक कार्य किये। सन् 1895 में बीकानेर भयंकर सूखे के चपेट में आ गया। तब महात्मा हंसराज ने लाला लाजपत राय, कॉलेज के छात्र एवं स्वयं सेवकों सहित वहां पहुंच कर लोगों को राहत दी। अनाथ बच्चों को आगरा, भिवानी और फिरोजपुर के आर्य अनाथालयों में दाखिल कराया।
कांगड़ा भूकंप सहायता कैंप 1905
इसी प्रकार सन् 1905 में कांगड़ा के भूकंप के समय भी उन्होंने लोगों की भरपुर मदद की।
सन् 1907 में अवध के अकाल ग्रस्त क्षेत्रों में महात्मा जी ने सैंकड़ो लोगों की जानें बचाई ।
कोहाट के दंगों से पीड़ित अनेक हिन्दू परिवारों को उन्हीं के प्रयास स्वरूप नवजीवन मिला ।

जब सन् 1932 में जम्मू- कश्मीर में हिन्दू - मुस्लिम दंगा हुआ तो महात्मा जी वहाँ अपने स्वयं सेवकों के साथ अविलम्ब पहुँचे । और संकट ग्रस्त क्षेत्रों में मुफ्त लंगर खुलवा कर लोगों की सहायता की।
संकट ग्रस्त जनता के लिये मुफ्त लंगर
जब बिहार में भूकम्प आया तब महात्मा जी ने ऐसे संकट ग्रस्त समय में अपने प्रयासों से क्षेत्र के 421 देहातों में 50 हजार व्यक्तियों के लिए मुफ्त राशन, कपड़े की व्यवस्था कराई। निस्सहाय स्त्रियों के आश्रय के लिए 'अबला आश्रम' स्थापित किये। और विद्यार्थियों के लिए छात्रवृत्तियां दीं।
सन् 1926 में स्वामी श्रद्धानन्द की हत्या कर दी गई, उस समय हिन्दू - मुस्लिम दंगे भड़कने का अंदेशा हो गया था। ऐसे कठिन समय में महात्मा हंसराज जी ने 'आर्य-महासम्मेलन' की अध्यक्षता कर लोगों को शान्त रहने की सलाह दी।
छुआ छूत दूर करो, हरिजन उद्धार करो।
आर्य महा सम्मेलन
हरिजन उद्धार, छुआ-छूत निवारण, विधवा विवाह, शुद्धि-आंदोलन और नारी-शिक्षा जैसे अनेक समाज-कल्याण के क्षेत्रों में महात्मा जी ने अपूर्व योगदान दिया। और प्रचलित कुरीतियों को दूर करने का भरपूर प्रयास किया।
महात्मा जी के प्रयास स्वरूप ही हरिद्वार में 'मोहन आश्रम' की स्थापना हो सकी थी, जो एकान्तवास और साधना के लिए आध्यात्म मार्ग के साधकों के लिए एक आदर्श स्थान है।

बढ़ती उम्र के कारण महात्मा जी अस्वस्थ रहने लगे। उन्हें पेट के रोग ने घेर लिया। परिणाम स्वरूप उन्होंने महात्मा आनन्द स्वामी को सभा का प्रधान-पद सौंप दिया।
जब डाक्टरों को दिखाया तो उन्होंने सलाह दी–
महात्मा जी के पेट में रोग है। यदि उचित चिकित्सा हो जाये तो इनके स्वस्थ होने की संभावना हो सकती है।
परन्तु उचित उपचार भी कामयाब न हो सका। बीस दिन की लम्बी बीमारी के बाद 74 वर्ष की आयु में 15 नवम्बर 1938 रात के 11 बजे उस महान् आत्मा ने हमेशा-हमेशा के लिए इस संसार को त्याग दिया।
ओउम्
धर्म, आत्म बलिदान, तप तथा त्याग स्वरूप यह महा मानव सदा-सदा के लिए अमर हो गया।

मृत्यु से कुछ समय पूर्व महात्मा 'आनन्द स्वामी', महात्मा हंसराज से मिले थे। तब उन्होंने अपनी अंतिम इच्छा बताई थी।
मेरा अन्तिम संस्कार आर्य पद्धति के अनुसार ही किया जाय।

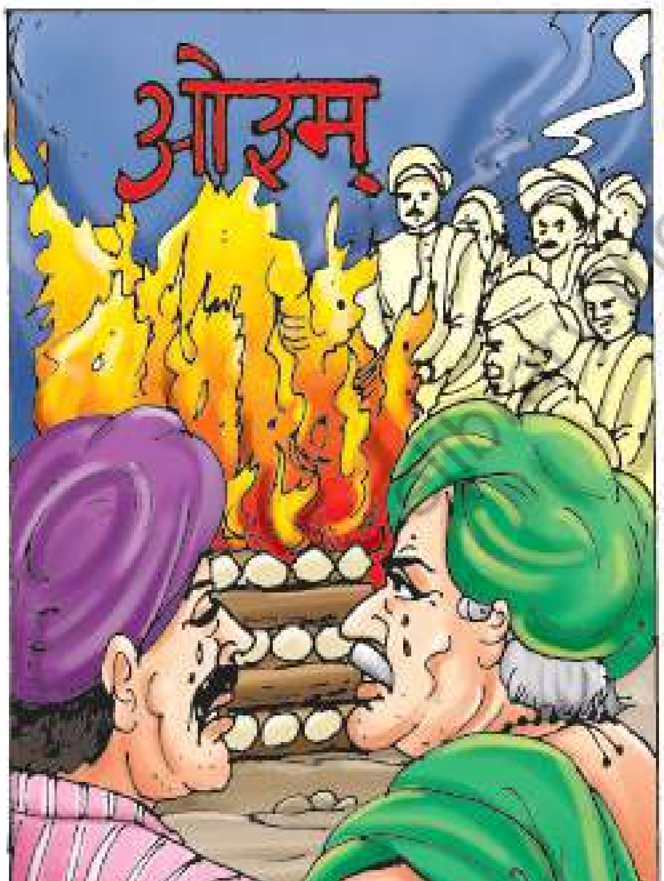
ओउम्
महात्मा जी की इच्छानुसार उनका अन्तिम संस्कार आर्य समाजी रीति के अनुसार ही किया गया था।

महात्मा हंसराज का सारा जीवन देश सेवा और परोपकार में बीता...
...आज भी लोग उन्हें 'महात्मा हंसराज' के नाम से याद करते हैं और करते रहेंगे।

हमारे अन्य प्रेरक कॉमिक्स